

UNIVERSAL  
LIBRARY

OU\_180200

UNIVERSAL  
LIBRARY



**OSMANIA UNIVERSITY LIBRARY**

Call No. H84  
P82 ६ Accession No. G.H. 157

Author प्रभात झास्ली

Title वसरदार पूर्णसिंह अध्यापक के निमित्त

This book should be returned on or before the date  
last marked below



# सरदार पूर्णसिंह अध्यापक के निबन्ध

सम्पादक

प्रभात शास्त्री, साहित्याचार्य, साहित्यरत्न

संशोधक:-

डा० हरवंशलाल शर्मा, एम्० ए०, पीएच्० डी०, डी० लिट्०  
अध्यक्ष, हिन्दी-संस्कृत-विभाग  
मुस्लिम यूनिवर्सिटी, अलीगढ़

कौशाम्बी-प्रकाशन, प्रयाग

प्रकाशक  
कौशाम्बी-प्रकाशन  
दारागंज, इलाहाबाद

Checked 1968

पृष्ठ संख्या १४८  
मूल्य—दो रुपये  
सम्बत् २०१३

Checked 1969

मुद्रक  
ओंकार प्रेस, इलाहाबाद

पूज्य पिता  
पण्डित गङ्गाप्रसाद जी मिश्र  
को  
श्रद्धासमेत



स्वच्छ और सरल शैली के विनोदी लेखक बालमुकुन्द गुप्त, स्फूर्तिदायक गम्भीर विवेचन के लेखों से पाठक को प्रेरणा देने वाले पूर्णसिंह और सरस भाषा में ज्ञान की अनुसन्धित्सा जगा देने वाले चन्द्रधर शर्मा गुलेरी इसी काल में दिखाया दिये थे। —‘हिन्दी साहित्य’ पृष्ठ ४३६

अध्यापक पूर्णसिंह के निबन्ध अधिकांश में भावात्मक हैं। यह भावुकता आध्यात्मिकता और धार्मिकता से सम्बन्धित है। आपने यद्यपि बहुत थोड़े निबन्ध लिखे हैं किन्तु जितने भी लिखे हैं वे सब शैली, भावाभिव्यक्ति की शक्तिमत्ता और प्रभावोत्पादकता के कारण बहुत प्रसिद्धि और प्रशंसा प्राप्त कर चुके हैं।

विषय को मूर्तिमान बनाने की आपमें अद्भुत क्षमता है। आपके भावों में वेगवान प्रवाह है। आपको समाज के निम्न वर्ग से विशेष स्नेह है, किसानों और मजदूरों के जीवन से तो आपको विशेष ममत्व है। —‘साहित्य-विवेचन’ से

कला का उपयोग जीवन के लिए करने वाले लेखकों को अपनी रचना बढ़ाने की चिन्ता नहीं करनी पड़ती। उनका एक एक वाक्य वही काम करता है जो दूसरों के असंख्य लेख नहीं कर पाते। उनको रचना उनकी व्यक्तिगत वस्तु होती है। वह किसी की जूठी अथवा चोरी की हुई नहीं होती। इस प्रकार के लेखकों में अध्यापक पूर्णसिंह की गणना होती है।

—‘हिन्दी साहित्य में निबन्ध’ से

## क्रम

| विषय                      | पृष्ठ   |
|---------------------------|---------|
| जीवनी—निबन्धकार पूर्णसिंह | सात     |
| भूमिका                    | पन्द्रह |
| निबन्ध                    | १—१०४   |
| परिशिष्ट                  | १०५     |

— — —

## निबन्धकार पूर्णसिंह



सरदार पूर्णसिंह की जन्मभूमि सीमाप्रान्त का ध्यान आने ही वत्स की अतीतकाल की नगरी तक्षशिला के विशाल विद्यापाठ का चित्र आँखों के सामने खिंच जाता है। यद्यपि हिन्दू-राज्यों के पतन के बाद विद्या का वह विशाल केन्द्र और उसका वातावरण लुप्तप्राय हो गया तथापि उस भूमि की प्रकृति में पूर्णसिंह जी जैसे अंग्रेजी, हिन्दी तथा पंजाबी के उद्भट विद्वान् का जन्म स्वाभाविक बात है। सीमा प्रान्त इस समय पाकिस्तान में है। इसी प्रान्त के एबटाबाद जिले के एक गाँव में इस मेधावी लेखक का जन्म सम्बत् १९३८ में हुआ था।

सरदार जी के पिता सरकारी नौकर थे, नौकरी ऐसी थी कि वर्ष-का अधिकांश सीमाप्रान्तीय पहाड़ी प्रदेशों के दौड़ा करने में ही व्यतीत हो जाता था। इस कारण वे पुत्र की शिक्षा-दीक्षा की ओर अधिक ध्यान नहीं दे पाते थे। गाँवों में पठानों की आबादी बहुत होने पर भी शिक्षा की व्यवस्था नहीं के बराबर थी। यह बात इनकी माँ को अधिक खटकती रही। अतः वे इनकी शिक्षा के लिए इन्हें लेकर पंजाब प्रान्त के रावलपिंडी जिले में रहने लगी और यहाँ के एक स्कूल में इनका नाम लिखा दिया। इनकी देख-रेख करने के लिए, इनकी माता भी वहीं रहा करती थीं। उन्हीं की संरक्षता में रह कर इन्होंने

## निबन्धकार पूर्णसिंह

रावलपिंडी के स्कूल में हाईस्कूल तक की शिक्षा पायी। फिर ये विशेष अध्ययन के उद्देश्य से पंजाब की तत्कालीन राजधानी लाहौर आ गये और यहाँ के एक कालेज में नाम लिखा कर १८ वर्ष की अवस्था में एफ० ए० की परीक्षा उत्तीर्ण कर ली। एफ० ए० पास करते ही इन्हें जापान जाकर अध्ययन करने के लिए एक विशेष छात्रवृत्ति मिल गयी। अतः इन्होंने सम्वत् १९५७ में जापान की यात्रा की और वहाँ टोकियो नगर में स्थित इम्पीरियल युनिवर्सिटी के छात्र हो गये। बड़ी लगन के साथ तीन वर्ष तक इस युनिवर्सिटी के छात्र रह कर इन्होंने व्यावहारिक रसायन-शास्त्र का विधिवत् अध्ययन किया।

जापान में पाल्पामिण्ट और रिलिजन होने वाली थी, उसमें भाग लेने के लिये स्वामी रामतीर्थ जा जापान आये हुए थे। टोकियो में उस समय इन्डोजापानी क्लब नाम की एक संस्था थी जिसमें भारतीय और जापानी विद्यार्थी काफी संख्या में रहा करते थे, इस संस्था के पूर्णसिंहजी मंत्री थे। इस क्लब में स्वामी जी भारतीय विद्यार्थियों से मिलने आये और वहाँ पर इनसे स्वामी जी की प्रथम भेंट हुई। इस प्रथम भेंट में ही इन्होंने अपने दार्शनिक वार्तालाप से स्वामी जी को अत्यधिक प्रभावित कर लिया। उसी दिन इनका बुद्धिस्ट (Buddhist) युनिवर्सिटी में भाषण होने वाला था, इन्होंने स्वामी जी से आग्रह किया कि आप भी मेरे साथ वहाँ चले। इनकी प्रार्थना पर स्वामी जी तैयार हो गये और पूर्णसिंह जी के साथ स्वामी जी का भी भाषण हुआ। स्वामी जी के प्रथम भाषण का इनके ऊपर इतना अधिक प्रभाव पड़ा कि ये उनके सच्चे शिष्य बनने के साथ ही अपनी रसायन-शास्त्र की पुस्तकें फेंक कर जापान में ही संन्यासी हो गये। बाद में भारत आकर स्वामी जी के साथ में संन्यासी वेश में इधर-उधर घूमने लगे। पर ये विचारशील व्यक्ति थे अतः अपनी इस प्रवृत्ति के कारण स्वामी जी की मृत्यु के पश्चात् अचानक इनके विचारों में काफी परि-



जापान में विद्यार्थी पूर्णसिंह स्वामी रामतीर्थ के साथ सम्वत् १९५६



जापान से लौटने के बाद संन्यासी परणसिंह

अध्यापक परणसिंह

वर्तन हो गया और ये पुनः सिक्ख बन गये तथा अपना विवाह करके गार्हस्थ्य जीवन व्यतीत करने लगे ।

सरदार जी प्रतिभावान् व्यक्ति थे । धीरे-धीरे इनकी योग्यता की ख्याति फैलने लगी । शीघ्र ही देहरादून के इम्पीरियल फॉरिस्ट इन्स्टीट्यूट में ७००) मासिक की नौकरी मिल गयी । पर अपने फक्कड़ स्वभाव और स्वामी रामतीर्थ के आध्यात्मिक विचारधारा से अत्यधिक प्रभावित होने के कारण इनके वेतन का आधा हिस्सा साधु-सन्तों के सत्कार और उपहार में ही व्यय हो जाता था ।

जिस समय ये इन्स्टीट्यूट में अध्यापक थे उसी समय उत्तर भारत में क्रान्तिकारी आन्दोलन का काफी जोर था । परिणामस्वरूप स्वामी रामतीर्थ के परमभक्त और इनके गुरुभाई मास्टर अमीरचन्द 'देहली-षडयंत्र' के मुकदमें में सरकारद्वारा पकड़ लिये गये । बाद में पुलिस को पता चला कि अमीरचन्द के घर में पूर्णसिंह भी आया जाया करते थे, इस कारण पुलिस वालों ने इस मुकदमें में इनकी भी पेशी कर दी । यह बात कटु सत्य थी कि इनका और मास्टर साहब का घनिष्ठतम सम्बन्ध था । देहलीयात्रा में ये प्रायः इन्हीं के घर ठहरा भी करते थे । इस दशा में सरदार जी के सामने महान् धर्म-संकट उपस्थित हो गया । ये क्लिप्तव्यविमूढ़ हो गये और अपना कोई विचार स्थिर न कर सके । मुकदमा बहुत गम्भीर था । इधर इनके शुभ-चिन्तकों को यह शका हुई कि यदि सरदार साहब ने भावना और भावुकता के आवेश में आकर अदालत के सामने अमीरचन्द से अपना सम्बन्ध अणुमात्र भी स्वीकार किया तो ये भी इस जाल में लपेट उठेंगे । इसलिये उन लोगों ने इन्हे मास्टर अमीरचन्द से किसी दशा में भी किसी प्रकार का सम्बन्ध स्वीकार न करने के लिए सावधान किया । अपने साथियों और सम्बन्धियों के समझाने बुझाने का सरदार जी के ऊपर प्रभाव पड़ गया और उन्होंने न्यायालय के सामने मास्टर अमीर-



वर्तन हो गया और ये पुनः सिक्ख बन गये तथा अपना विवाह करके गार्हस्थ्य जीवन व्यतीत करने लगे ।

सरदार जी प्रतिभावान् व्यक्ति थे । धीरे-धीरे इनकी योग्यता की ख्याति फैलने लगी । शीघ्र ही देहरादून के इम्पीरियल फॉरेस्ट इन्स्टीट्यूट में ७००) मासिक की नौकरी मिल गयी । पर अपने फक्कड़ स्वभाव और स्वामी रामतीर्थ के आध्यात्मिक विचारधारा से अत्यधिक प्रभावित होने के कारण इनके वेतन का आधा हिस्सा साधु-सन्तों के सत्कार और उपहार में ही व्यय हो जाता था ।

जिस समय ये इन्स्टीट्यूट में अध्यापक थे उसी समय उत्तर भारत-में क्रान्तिकारी आन्दोलन का काफी जोर था । परिणामस्वरूप स्वामी रामतीर्थ के परमभक्त और इनके गुरुभाई मास्टर अमीरचन्द 'देहली-षड्यंत्र' के मुकदमें में सरकारद्वारा पकड़ लिये गये । बाद में पुलिस-को पता चला कि अमीरचन्द के घर में पूर्णसिंह भी आया जाया करते थे, इस कारण पुलिस वालों ने इस मुकदमें में इनकी भी पेशी कर दी । यह बात कटु सत्य थी कि इनका और मास्टर साहब का घनिष्ठ-तम सम्बन्ध था । देहलीयात्रा में ये प्रायः इन्हीं के घर ठहरा भी करते थे । इस दशा में सरदार जी के सामने महान् धर्म-संकट उपस्थित हो गया । ये क्लिप्तव्यविमूढ़ हो गये और अपना कोई विचार स्थिर न कर सके । मुकदमा बहुत गम्भीर था । इधर इनके शुभ-चिन्तकों को यह शका हुई कि यदि सरदार साहब ने भावना और भावुकता के आवेश में आकर अदालत के सामने अमीरचन्द से अपना सम्बन्ध अणुमात्र भी स्वीकार किया तो ये भी इस जाल में लपेट उठेंगे । इसलिये उन लोगों ने इन्हे मास्टर अमीरचन्द से किसी दशा में भी किसी प्रकार का सम्बन्ध स्वीकार न करने के लिए सावधान किया । अपने साथियों और सम्बन्धियों के समझाने बुझाने का सरदार जी के ऊपर प्रभाव पड़ गया और उन्होंने न्यायालय के सामने मास्टर अमीर-

## निबन्धकार पूर्णसिंह

चन्द से अपना किसी प्रकार का भी सम्बन्ध नहीं स्वीकार किया, यद्यपि यह सब उनकी आत्मा के नितान्त विपरीत था। अस्तु, किसी तरह इस मुकदमे से इन्हें छुटकारा तो मिल गया किन्तु मास्टर अमीरचन्द को फाँसी की सजा हो गयी। अतः इस घटना से न्यायप्रिय सरदार जी को बहुत भयङ्कर मानसिक धक्का लगा और वे प्रायः उदास रहने लगे। यह घटना अक्टूबर सन् १९१४ की है।

इसी बीच इनके जीवन में एक और भी घटना घटी। सरदार जी स्वभाव से ही स्वाभिमानी, और स्वतंत्रचेता व्यक्ति थे। इन्हें अपने कार्यों में कभी किसी का हस्तक्षेप जरा भी पसन्द नहीं था। इसी कारण 'इम्पोरियल फॉरेस्ट इन्स्टीट्यूट' के अधिकारियों से इनका मतभेद रहने लगा। धीरे-धीरे इनके और वहाँ के अधिकारियों के बीच का मतभेद उग्र रूप में परिणत हो गया। अन्त में सरदार जी इन्स्टीट्यूट की नौकरशाही से त्यागपत्र देकर ग्वालियर चले गये, जहाँ ये कई वर्ष रहे। वहाँ रह कर सिक्खों के दस गुरुओं की जीवनी-सम्बन्धी 'दि बुक ऑफ टेन मास्टर्स'<sup>१</sup> तथा स्वामी रामतीर्थ की जीवनी 'दि स्टोरी ऑफ स्वामी राम'<sup>२</sup> यह दो पुस्तकें लिखीं। इसके बाद यहाँ इनका मन नहीं लगा और ये वहाँ से पंजाब के जड़ावाला स्थान में जाकर रहने लगे। कुछ दिन रह कर इन्होंने यहाँ पर खेती का काम प्रारम्भ किया। इससे इन्हें लाभ के बजाय काफी हानि हुई। इसका परिणाम यह हुआ कि इनके ऊपर काफी श्रृण हो गया और ये अर्थ-संकट से परेशान रहने लगे।

इसी परेशानी की हालत में ये सन् १९३० में नौकरी ढूँढ़ने के लिए लखनऊ आये पर दुर्भाग्यवश इन्हें नौकरी नहीं मिली। लखनऊ-

---

१—सिक्ख युनिवर्सिटी प्रेस निस्वत रोड, लाहौर।

२—रामतीर्थ पब्लिकेशन लीग, लखनऊ।

में नौकरी न मिलने के कारण इस महान् मेधावी कलाकार की मनो-  
दशा कैसी थी, इसका चित्रण इनके मित्र तथा स्वामी रामतीर्थ के शिष्य  
स्वामी नारायणानन्द ने 'दि स्टोरी ऑव स्वामी राम' की भूमिका में  
बड़े सुन्दर ढंग से किया है—“जब १९३० में उनकी मेंट मुम्बसे  
लखनऊ में हुई तो वे नौकरी की तलाश में घूम रहे थे। वास्तव में वे  
उस गार्हस्थ्य जीवन से ऊब गये थे और फिर उसमें जाने की इच्छा  
नहीं थी। सच बात तो यह है कि ये सांसारिक और गार्हस्थ्य जीवन के  
बन्धन से बिल्कुल थक गये थे।” इसके एक वर्ष बाद इसी संकट-  
पूर्ण परिस्थिति में ही वीणा-पाणि के इस भावुक और प्रतिभाशाली  
उपासक की मृत्यु सम्बत् १९८६, मार्च १९३१ में हो गयी।

प्रस्तुत पुस्तक सरदार जी के निबन्धों का संकलन है। यह बड़े  
दुःख की बात है कि जहाँ इन्होंने अंग्रेजीभाषा में\* आधे दर्जन से  
अधिक पाण्डित्यपूर्ण पुस्तकें लिखी हैं, वहीं ये हिन्दी में सच्ची वीरता,  
कन्यादान, आचरण की सभ्यता, मजदूरी और प्रेम, अमेरिका का मस्त  
जोगी वाल्ट ह्विटमैन और पवित्रता यही छः लेख लिख पाये। पर इन्हीं  
लेखों के महारे ये हिन्दी साहित्य के इतिहास में अजर-अमर हो गये  
और इनकी हिन्दी के उच्च कोटि के निबन्धकारों में गणना होने लगी।  
इनके पीछे तो इस कोटि के भावात्मक निबन्धों के लिखने में विशेष  
प्रगति नहीं हुई है। केवल डा० रघुवीरसिंह ने ऐतिहासिक तथ्यों को लेकर

---

\*पूरुसिंह जी की अंग्रेजी की दो पुस्तकों—‘टेन मास्टर्स’ तथा ‘दि  
स्टोरी ऑव स्वामी राम’—का उल्लेख पहले हो चुका है। इसके  
अतिरिक्त इनकी अंग्रेजी की ये पुस्तकें भी हैं—(१) स्प्रिट वान’ पिपुल  
(२) दि सिस्टर्स आव स्पाइनिंग व्हील (३) दि अनस्ट्रंग बीड्स (४)  
एट हिज फीट (५) एन आफटरनून विथ सेल्फ और (६) दि स्प्रिट ऑव  
ओरियन्टल पोयट्री।

## निबन्धकार पूर्णसिंह

ऐसे भावात्मक निबन्ध लिखे, अथवा इधर नवोदित लेखकों में पुनः श्री विद्यानिवास मिश्र भावनापूर्ण ऐसे निबन्धों की रचना हिन्दी में कर सके हैं।

सरदार जी के सभी निबन्धों का यह स्वतन्त्र पुस्तकाकार रूप पहली बार हिन्दी-जगत् के सामने आ रहा है। ये निबन्ध प्रायः हिन्दी की पाठ्य-पुस्तकों में पाये जाते हैं पर उन पुस्तकों में संग्रहीत तथा इस पुस्तक में मुद्रित निबन्धों के पाठ में पाठकों को अध्ययन करते समय काफी अन्तर मिलेगा। पाठ्य-पुस्तक के सम्पादकों ने इनके निबन्धों को स्थान देते समय उनके मूल रूप में काफी परिवर्तन और परिवर्द्धन कर दिया है। मुझे यह नीति पसन्द नहीं है। मैंने इस संग्रह में इनके सभी निबन्ध उसी रूप में संकलित किये हैं जिस रूप में ये आज से ४६ वर्ष पूर्व पत्रों में प्रकाशित हुए थे। इस कारण इन निबन्धों में विद्वानों को पढ़ते समय लिग और वाक्य-संगठन सम्बन्धी अशुद्धियाँ मिल सकती हैं। मैंने उनका संशोधन करना लेखक और भाषा के इतिहास के साथ अन्याय समझा। सरदार जी अंग्रेजी, पंजाबी, उर्दू, तथा संस्कृत आदि कई भाषाओं के अच्छे ज्ञाता थे। ऐसी दशा में इनके निबन्धों में इन भाषाओं के उद्धरणों का आना स्वाभाविक ही था। अंग्रेजी के उद्धरण तो इन्होंने कई एक दिये हैं। इसी प्रकार उर्दू-शब्दों का प्रयोग भी इन्होंने जम कर किया है। यत्र-तत्र संस्कृत और पंजाबी के उद्धरण भी आ गये हैं। मैंने अंग्रेजी उद्धरणों का तो साथ ही साथ अनुवाद दे दिया है। शेष के स्पष्टीकरण के लिए पुस्तक के अन्त में परिशिष्ट संलग्न है।

इसमें तो कोई सन्देह ही नहीं है कि इन्होंने आचार्य महावीर प्रसाद जी द्विवेदी के व्यक्तित्व और प्रभाव के आकर्षण से ही हिन्दी में लिखना प्रारम्भ किया किन्तु इस उद्भट लेखक का बहुत कुछ दुर्भाग्य था कि जहाँ ये हिन्दी में भावात्मक निबन्धों के जन्मदाता तथा लाब्-

शिक्षताप्रधान शैली के प्रतिष्ठापक हैं वहाँ हिन्दी के माने जाने समालोचक भी इनके विषय में बहुत कम जानकारी रखते हैं। पूज्य-पाद आचार्य शुक्ल जी ने अपने साहित्य के इतिहास में इनके द्वारा केवल तीन ही चार निबन्ध लिखे जाने का उल्लेख किया है। एक समालोचक ने तो इनके सम्बन्ध में यहाँ तक लिख मारा है कि ये गाँधीवाद से प्रभावित थे, पर वास्तविक बात तो यह है कि जिस समय ये लेख लिखे गये उस समय भारतीय राजनीति में महात्मा गाँधी का कोई अस्तित्व ही नहीं था। यह बात सही है कि आज से ४६ वर्ष पूर्व यूरोप के कुछ हिस्सों में मजदूरसंगठन-विषयक जिस आन्दोलन का जन्म हो रहा था उससे सरदार जी पूर्ण रूप से परिचित थे। उसका प्रत्यक्ष प्रभाव इनके 'मजदूरी और प्रेम' शीर्षक निबन्ध में मिलता है। उस आन्दोलन से प्रभावित निबन्ध के इन अंशों को देखिये—“जब तक धन और पेशवर्ग की जन्मदात्री हाथ की कारीगरी की उन्नति नहीं होती तब तक भारतवर्ष ही क्या किसी भी देश या जाति की दरिद्रता नहीं दूर हो सकती। यदि भारत की तीस करोड़ नर-नारियों की डँगलियाँ मिलकर कारीगरी के काम करने लगे तो उनकी मजदूरी की बदौलत कुबेर का महल उनके चरणों में आप ही आप आ गिरे। भारतवर्ष जैसे दरिद्र देश में मनुष्य के हाथों की मजदूरी के बदले कलों से काम लेना काल का डंका बजाना है।” निबन्धकार का यह मन्तव्य हमारे यहाँ के बड़े से बड़े नेता को भी पूर्ण रूप से मान्य होगा। आज भी तो कांग्रेस चिल्ला-चिल्ला कर यही कह रही है कि भारतवर्ष की दरिद्रता कुटीर-उद्योगों से ही दूर हो सकती है।

आशा है कि हिन्दी-जगत् में इस पुस्तक का स्वागत होगा। आज हिन्दी देश को राष्ट्र भाषा है। पर बड़े दुःख के साथ लिखना पड़ रहा है कि भारत के कुछ हिस्सों में इस समय भी हिन्दी का काफी विरोध हो रहा है। इसी नीति का अनुसरण पंजाब के सिक्ख भाई भी कर

## निबन्धकार पूर्णसिंह

रहे हैं। मुझे पूर्ण विश्वास है कि पंजाब के सिक्ख भाई सरदार जी की इस पुस्तक को मनोयोग के साथ पढ़ेंगे तो हिन्दी के प्रति जो उनके मन में विद्वेष-भावना है, भ्रममूलक सिद्ध होगी और उन्हें मालूम होगा कि हिन्दी किसी जातिविशेष की भाषा न कभी थी न आज ही है। सरदार जी ने सिक्ख होकर भी हिन्दी में जिस प्रकार के उच्च कोटि के निबन्ध लिखे हैं ऐसे निबन्ध जिनकी मातृ-भाषा हिन्दी है वे भी आज तक नहीं लिख पाये। यदि सिक्ख भाई भाषा के क्षेत्र-में सरदार जी के समान हिन्दी के प्रति अपनी निष्ठा प्रकट करें तो देश और राष्ट्र का महान् कल्याण होगा।

मेरी बड़ी इच्छा थी कि इस पुस्तक के साथ सरदार जी की एक प्रामाणिक जीवनी दी जाती। और मैंने इस सम्बन्ध में बहुत प्रयत्न भी किया पर कोई सफलता नहीं मिली। विवश होकर इस अपूर्ण जीवनी से ही मुझे सन्तोष करना पड़ रहा है। इस पुस्तक को तैयार करने में मुझे हिन्दी के सुकवि भाई जयशङ्कर त्रिपाठी से काफी सहायता मिली। वे अपने हैं अतः उनके सम्बन्ध में क्या कहूँ। हिन्दी के उद्भट विद्वान डा० हरवंश लाल शर्मा ने इस पुस्तक की पाणि-ग्रन्थपूर्ण भूमिका लिख कर पुस्तक की उपयोगिता और भी बढ़ा दी है। पुस्तक के पाठकों से अन्त में मेरा निवेदन है कि पूर्णसिंह के निबन्धों या उनकी जीवनी के विषय में यदि उन्हें कोई नयी जानकारी हो तो मुझे सूचित करें जिससे इस पुस्तक का अगला संस्करण और भी उपयोगी बनया जा सके।

कविकुटीर

द्वारागंज, प्रयाग

विजयादशमी २०१३ वि०।

—प्रभात शास्त्री

# भूमिका



## निबन्ध की विशेषताएँ—

अपने वर्तमान रूप में हिन्दी-निबन्ध पश्चिम की देन हैं। हिन्दी के लेखकों ने प्रायः अंग्रेज निबन्धकारों को अपना आदर्श माना है। यह सब कुछ होते हुये भी हिन्दीनिबन्ध को अंगरेजीनिबन्ध की हूबहू नकल कहना समीचीन न होगा। बाह्य आकार-प्रकार और वेष-भूषा पाश्चात्य ही सही किन्तु हिन्दीनिबन्ध की आत्मा इस देश की है, यह उसके नाम से ही ध्वनित है अंग्रेजी में निबन्ध को Essay (ऍसे) कहते हैं या यह कहिए कि Essay के लिये हिन्दी में निबन्ध शब्द स्वीकृत हुआ है। Essay शब्द का उद्भव फ्रांसीसी शब्द 'एसाई' से है जिसका अर्थ है प्रयास। इसका अर्थ हुआ कि अंगरेजी 'ऍसे' शब्द का अर्थ अभीष्ट विषय के निरूपण का प्रयास मात्र है, परन्तु निबन्ध शब्द, जो हिन्दी में संस्कृत से ही लिया गया (नि = निःशेष अर्थात् पूर्ण बंध = कसाव) 'सम्यक् कसाव' का द्योतक है। एक में विचारों अथवा भावों को अभिव्यक्त करने का प्रयत्न है, पर दूसरे में उन्हें कस कर बाँधने का कार्य है। स्पष्ट है कि पहले में अन्तःकरण (हृदय और बुद्धि) का उतना दखल स्वीकार नहीं किया गया जितना दूसरे में। बाह्य और आन्तरिक का यही भेद पश्चिम और

## भूमिका

पूर्व की विभाजक रेखा है जिसकी स्थिति अंग्रेजी और हिन्दी के निबन्धों के बीच में भी स्वाभाविक है। अंग्रेजी के सर्वप्रथम निबन्धकार बेकन ने भी 'एसे' को बिखरे हुए चिन्तन (Dispersed meditation) के रूप में माना है। इससे भी यही प्रकट होता है कि वे लोग निबन्ध को गम्भीर वस्तु न मानकर 'चलती हुई' सी शैली ही मानते हैं किन्तु प्रायः हिन्दी निबन्धकारों का मन्तव्य ऐसा नहीं है। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने निबन्ध को गद्य की कसौटी माना है।

अधिक बड़ी वस्तु के बँधान में कसावट आ नहीं सकती इसलिए निबन्ध का आकार अनिवार्य रूप से संक्षिप्तता की ओर झुका होता है। वैसे कुछ लोग ४००-५०० पृष्ठों के प्रबन्ध को भी निबन्ध कह देते हैं किन्तु यह उचित नहीं जँचता। वास्तव में लघुकथा की तरह निबन्ध भी एक बैठक में पढ़े जाने योग्य होता है। निबन्ध और प्रबन्ध का अन्तर बहुत कुछ कहानी और उपन्यास के अन्तर जैसा भी समझना चाहिये। वर्सफोल्ड (Worsfold) ने लिखा है :—

“The essay is distinguished by the brevity of its external form and by the presence of the element of reflection. It treats a subject from a single point of view and permits the personal characteristics of the writer to assume a greater prominence than is permitted in the regular and complete treatment of the same subject in a treatise on book.”

अर्थात् बाह्य आकार की संक्षिप्तता तथा चिन्तनतत्त्व का समावेश निबन्ध के (प्रबन्ध से) भेदक हैं। इसमें विषय का निरूपण एकाङ्गी होता है तथा लेखक की व्यक्तिगत विशेषताओं के स्फुरण का प्रबन्ध

अथवा ग्रन्थ की अपेक्षा, जिसमें विषय का संयत और विशद निरूपण होता है, अधिक स्थान रहता है।

इस कथन से यह भी स्पष्ट है कि लेखक के व्यक्तित्व की अभिव्यक्ति निबन्ध में आवश्यक या अनिवार्य ही नहीं प्रधान भी है। यदि यह कहा जाय कि पाश्चात्य लेखक तो निबन्ध को व्यक्तित्व-प्रकाशन-के माध्यमरूप में ही अपनाने हैं तो असंगत न होगा। जे० बी० प्रीस्टले के अनुसार 'सच्चे निबन्धकार के लिये किसी विषयविशेष का बंधन नहीं, वह इच्छानुसार कोई भी विषय चुन सकता है। उसमें किसी विषय को मनोऽनुकूल कर लेने की शक्ति होती है क्योंकि इस कौशल के द्वारा वह वास्तव में अपने व्यक्तित्व की अभिव्यक्ति करता है... एक-एक शब्द उसके अन्तर के तारों से मुखरित होकर निकलते हैं जिसमें उसके अन्तर्गत की अगाधता और आकुलता ध्वनि बन कर समायी रहती है।' अंग्रेजी के निबन्धकार अपने निबन्धों में चिन्तन, विषयनिरूपण और . . . सिद्धान्तों का हल्का सा रंग ही देना उचित समझते हैं जिनका प्रकृतस्थल उनकी दृष्टि में निबन्ध न होकर 'प्रबन्ध' है। उनके अनुसार यदि निबन्ध में इनका समावेश किया गया तो वह दुरुह हो जायेगा।

व्यक्तित्व-चित्रण को प्राधान्य देने में लेखक को प्रस्तुत विषय के अतिरिक्त भी बहुत कुछ कहना पड़ता है इसीलिये क्राँव ने निबन्ध को 'अनिवार्यरूप से अग्रदूत' और जानसन ने 'अव्यवस्थित' रचना माना है। जब आत्माभिव्यक्ति ही प्रधान हो गयी तो तुच्छ में तुच्छ विषयों पर भी निबन्ध प्रस्तुत हुए। अंग्रेजी के 'कैट्स' और 'ए पीस ऑफ चॉक' आदि निबन्ध ऐसे ही हैं। हिन्दी में भी इस श्रेणी के अनेक निबन्ध हैं, उदाहरण के रूप में पं० प्रतापनारायण मिश्र के 'आप', 'बात' आदि पं० बालकृष्ण भट्ट का 'आँसू' और डा० हजारीप्रसाद द्विवेदी के 'नाखून क्यों बढ़ते हैं', 'आम्र फिर बौरा गये' आदि का नाम लिया जा

## भूमिका

सकता है, किन्तु इन निबन्धों में प्रस्तुत विषय का निरूपण भी हुआ है और लेखक उसे भी अपने व्यक्तित्व के साथ-साथ रखे हुए है। अंग्रेजी के निबन्धकार वैयक्तिकता का गाढ़ा रंग चढ़ाने के लिये इधर-उधर की बहुत सी बातें कहते हैं, उनके निबन्धों में अभीष्ट विषय विषयान्तर में प्रायः खो जाया करता है। हिन्दी-निबन्धों में यह बात नहीं है। उनमें व्यक्तित्व चित्रण के उद्देश्य से किये हुए विषयान्तर यथाप्रमंग होते हैं और बहुत दूर तक नहीं जाते, जिससे अभीष्ट विषय का तारतम्य उनके कारण टूट नहीं पाता।

व्यक्तित्व के स्वच्छन्द प्रकाशन के अतिरिक्त रोचकता और साहित्यिकता पर भी पाश्चात्य निबन्धकार अधिक बल देते हैं। वास्तव में साहित्य के किसी भी अङ्ग के लिये ये गुण अनिवार्यतः अपेक्षित हैं इस विषय में दो मत हो ही नहीं सकते। अतः भारतीय विद्वान् भी निबन्ध में इन दोनों तत्वों का समावेश आवश्यक समझते हैं। लक्ष्य दोनों का एक है किन्तु साधन और उनके आदर्शों में अन्तर है। पाश्चात्य लेखक सरलता और काव्योपमता के माध्यम से रोचकता का पल्ला पकड़ते हैं, अपने वैयक्तिक अनुभवों का सरस शैली में उन्मुक्त प्रकाशन करते हैं—इतना उन्मुक्त कि पाठक भी निबन्ध के विषय को भूल कर लेखक के व्यक्तित्व से ही अधिक प्रभावित होता हुआ आत्मीयता का अनुभव करने लगता है किन्तु हिन्दी-निबन्धकार विषय और विषयान्तर में सन्तुलन रखते हुए बुद्धि एवं हृदय के योग द्वारा रोचकता उत्पन्न करना अच्छा समझते हैं, निबन्ध को डायरी या संस्मरण-की श्रेणी की ओर धकियाना उन्हें पसन्द नहीं। इसका कारण हमें भारतीय चिन्तनधारा के प्रवाह में दूर से ही फैला हुआ दाँख पड़ेगा, जिसके अनुसार साहित्य का प्रत्येक अङ्ग उद्देश्यविहीन मनोरञ्जन पर ही आधारित न रह कर 'हित' की भावना पर आश्रित रहता है। अतः उसमें आदर्श, संदेश या उपदेश पर भी बराबर ध्यान दिया जाता है।

## निबन्ध की विशेषताएँ

यही कारण है कि भारतेन्दु-युग से लेकर वर्तमान युग तक के निबन्धों में शायद ही कोई निबन्ध मिले जिसका उद्देश्य व्यक्तित्वचित्रण के अतिरिक्त और कुछ भी न हो। हिन्दी-निबन्धकार की आत्माभिव्यक्ति का सबसे जबर्दस्त साधन शैली ही है। उसी के झाने पढ़ें में वह अपने आपको छुपा कर प्रकट करता है।

अपने आकार-प्रकार में निबन्ध कहानी से बहुत कुछ मिलता जुलता होता है। कहानी की भाँति यह भी एक निश्चित लक्ष्य लेकर चलता है। इसका आकार भी वैसा ही छोटा होता है, जिसके कारण इसमें भी कहानी जैसा ही अधूरापन रहता है जो अपने आरम्भ में पूर्ण होता है। कहानी की तरह निबन्ध भी विषय के किमी एक अङ्ग पर प्रकाश डालता है या सम्पूर्ण विषय की एक रूप रेखा प्रस्तुत करता है पर उसकी समाप्ति इस ढंग से होती है कि उसका मनोवैज्ञानिक प्रभाव समाप्ति-बिन्दु तक चरम सीमा पर पहुँच जाता है। कहानी और निबन्ध का सबसे बड़ा अन्तर यह है कि कहानी में कहानाकार तटस्थ और वस्तुनिष्ठ रहता है, खुल कर सामने नहीं आता परन्तु निबन्धकार आत्मनिष्ठ भी रहता है और पाठक के साथ सीधा तादात्म्य स्थापित कर लेता है। अंग्रेजी के समीक्षक निबन्ध को उसकी सरल एवं सरस शैली, आत्मनिष्ठता तथा अभिव्यक्ति की काव्यात्मकता के आधार पर प्रगीतमुक्तकों के समकक्ष मानते हैं किन्तु हिन्दी के विचारात्मक निबन्ध इस कांठि में नहीं रखे जा सकते। अध्यापक पूर्णसिंह के भावात्मक निबन्ध अलवत्ता इसी श्रेणी में आते हैं और गद्य गीत तो ऐसे होते ही हैं।

निबन्ध में लेखक का व्यक्तित्व-चित्रण आवश्यक है तो यह भी अनिवार्य है कि उसमें उसके हृदयपक्ष का भी महत्वपूर्ण योग हो। अंग्रेजीटाइप के मनमौजी निबन्धों का तो कहना ही क्या, गम्भीर विचारात्मक निबन्धों में भी भावमय स्थलों का होना अभीष्ट है।

## भूमिका

आचार्य शुक्ल जहाँ आदर्श निबन्ध में नये नये विचारों की उद्भावना और उनके ग्रथित तारतम्य को आवश्यक समझते हैं जिसको पढ़कर पाठक की बुद्धि उत्तेजित होकर किसी नयी विचार पद्धति पर दौड़ पड़े, और उसकी गहन विचार धारा 'पाठकों को मानसिक श्रमसाध्य नूतन उपलब्धि के रूप में जाने पड़े,' वहाँ वे बुद्धि के साथ हृदय का योग भी आवश्यक समझते हैं। उनके 'लोभ और प्रीति', 'श्रद्धा और भक्ति' जैसे निबन्धों में भी अनेक भावात्मक स्थल हैं जिनमें उनका मानव बार बार उभर आया है। रोचकता उत्पन्न करने के लिए यह परमावश्यक है भी। इसीलिये निबन्ध को भाषा में हास्य, व्यंग, विनोद ध्वनिप्रवणता और लाक्षणिकता आदि का समावेश स्वतः ही हो जाता है। ]

## वर्गीकरण—

अपनी अपनी व्यक्तिगत शैली के आधार पर अनेक लेखकों ने समय-समय पर बहुत से निबन्ध लिखे हैं जिनका वर्गीकरण विषय, शैली आदि के आधार पर कई प्रकार से किया जा सकता है, फिर भी साहित्य के इस अङ्ग की सर्वमुखी व्यापकता के कारण एक निश्चित वर्गीकरण करना असम्भव-सा ही है। अंग्रेजी साहित्य में मोटे तौर पर 'विषयवस्तुप्रधान' और 'व्यक्तिप्रधान' भेदों की चर्चा है। बहुत से आलोचक निबन्ध के पाँच प्रकार बताते हैं—विचारात्मक, भावात्मक, व्याख्यानात्मक, वर्णनात्मक तथा व्याख्यानात्मक। पहले प्रकार का वर्गीकरण तो हिन्दीनिबन्धों की प्रकृति के ही अनुकूल नहीं पड़ता। हमारे प्रारम्भ में दिये गये विवेचन से ही यह निष्कर्ष निकल आता है। दूसरे वर्गीकरण का भी कोई सैद्धान्तिक आधार नहीं है केवल वाह्य विशेषताओं के आधार पर उन्हें श्रेणीबद्ध कर दिया गया है अतएव इसके अनुसार एक श्रेणी के निबन्ध दूसरी श्रेणी के निबन्धों के क्षेत्र-

## हिन्दीनिबन्ध-शैली का विकास

में भी प्रविष्ट हो जाते दीख पड़ते हैं । व्याख्यानात्मक निबन्ध में भी विचार और भाव का मिश्रण रहता ही है केवल अभिव्यक्तिशैली के आधार पर उसको अलग माना गया है । इसी प्रकार वर्णनात्मक तथा व्याख्यानात्मक निबन्धों में विचार और भाव की ओर ध्यान नहीं जाता, अपितु शैली की विशेषता के कारण प्रत्यक्ष एवं परोक्ष घटनाओं की ओर ही जाता है । इस शैली के आधार पर वर्गीकरण करने में और भी कितने ही प्रकार सामने आ सकते हैं । वास्तव में प्रत्येक निबन्ध में विचार और भाव सामान्यरूप से रहते हैं इसलिए इन्हीं के आधार पर वर्गीकरण करना अधिक वैज्ञानिक प्रतीत होता है । 'प्राधान्येन व्यपदेशा भवन्ति' के अनुसार विचारप्रधान निबन्धों को 'विचारात्मक' और भावप्रधानों को 'भावात्मक' वर्ग के अन्तर्गत मान लिया जाय तो कैसा रहे ? शुक्ल जी तो प्रकृत निबन्ध को विचारात्मक ही मानते हैं जिसमें बुद्धि के साथ हृदय का भी योग होता है ।

### हिन्दीनिबन्ध-शैली का विकास—

हिन्दी में निबन्धों का श्रीगणेश अंग्रेजी के अनुकरण पर भारतेन्दु बाबू हरिश्चन्द्र के भावात्मक निबन्धों से हुआ । हिन्दी साहित्य के लिए यह एकदम अभिनव वस्तु थी । आधुनिक निबन्ध से मिलती जुलती कोई वस्तु संस्कृतसाहित्य में भी नहीं थी, यदि संस्कृत साहित्य में भी निबन्ध के नाम पर कोई वस्तु खोजी ही जाय तो उसका रूप गद्यात्मक न होकर पद्यात्मक ही मिलेगा । कालिदास के नाम से प्रचलित 'ऋतुसंहार' विभिन्न ऋतुओं पर लिखे हुए निबन्धों का संग्रह कहा जा सकता है यद्यपि उसके सम्बन्ध में प्रयुक्त निबन्ध शब्द आधुनिक टिपिकल निबन्धों का संकेतक नहीं माना जा सकता । अंग्रेजी-साहित्य से हिन्दीसाहित्य का सम्पर्क होने के पूर्व अंग्रेजी में निबन्ध पूर्णतया विकसित हो चुका था । भारतेन्दु-युग के लेखक साहित्य के

## भूमिका

सभी अङ्गों के क्षेत्र में प्रयोग कर रहे थे। विदेशी साहित्य की चमक-दमक देख कर वे दंग रह गये थे और अपने साहित्य में भी यकबारागी वैसी ही विविधता लाना चाहते थे। कभी वे उपन्यास का प्रणयन करते, कभी कहानी पर हाथ जमाते, कभी पत्र-सम्पादनकला में अपनी प्रतिभा की आजमाइश करते और कभी समय मिलने पर निबन्ध रचना भी करते थे। व्यग्रता की इस दशा में निबन्ध या अन्य किसी साहित्यिक अङ्ग के समग्रतः संस्कृत हो जाने की आशा नहीं की जा सकती, अतः उस युग के निबन्धों में जहाँ भावों और विचारों की शिथिलता है वहाँ शैलीगत त्रुटियाँ भी परिलक्षित होती हैं, व्याकरण-विरुद्ध प्रयोग, अव्यवस्थित शब्द विन्यास, विराम आदि चिन्हों की उपेक्षा आदि अनेक प्रकार की शिथिलताएँ प्रायः तत्कालीन प्रत्येक निबन्धकार की भाषा में मिलती हैं।

भारतेन्दु हरिश्चन्द्र 'कवि-वचन-सुधा' में भाव व विचारमिश्रित अपने अनेक निबन्ध प्रकाशित कर इस दिशा में नवोदित लेखकों को मार्ग दिखा चुके थे परन्तु साहित्यिक निबन्धों का वास्तविक प्रारम्भ पं० बालकृष्ण भट्ट ने किया। भारतेन्दु जी की भावात्मक शैली को निबन्धानुकूल व्यवस्थित कर उन्होंने उसके विकास में महत्वपूर्ण योग दिया। निबन्ध को साहित्यिक रूप देकर हिन्दी में त्रिदशसाहित्य प्रस्तुत करना उनका प्रथम लक्ष्य था। संस्कृतप्रधान शैली के प्रवक्तृ होकर भी वे भावानुकूल शब्दचयन का ध्यान रखते थे। अतः जहाँ इन्होंने संस्कृत के शब्दों से काम चलता न देखा वहाँ उर्दू और अंग्रेजी के सशक्त शब्दों को अपना कर शैली को पूर्णतया प्रभावोत्पादक बनाया। जानसन, एडिसन और मैकाले से वे बहुत प्रभावित थे। निःसन्देह इनके निबन्ध भारतेन्दु के निबन्धों की अपेक्षा हिन्दीगद्य को अधिक परिमार्जित कर सके। पं० प्रतापनारायण मिश्र की-सी ग्राम्यता इनकी रचना में नहीं मिलती।

## हिन्दीनिबन्ध-शैली का विकास

भारतेन्दु-युग में ही 'प्रेमघन' ने विचारप्रधान निबन्धों का प्रारम्भ किया, 'भारतसौभाग्य', 'वारांगना-रहस्य', 'वंगविजेता', 'संयोगिता-स्वयंवर' आदि की आलोचना द्वारा उन्होंने नये क्षेत्र में कदम बढ़ाया और आलोचना का मूलपात किया। उनके निबन्धों की शैली में वैयक्तिक विलक्षणता स्पष्ट रूप से परिलक्षित होती है। संस्कृत के समस्त, सन्धिज आदि शब्दों के प्रयोग तथा अनुप्रास के योग से उन्होंने अपनी शैली को मनोरञ्जक बनाने का प्रयत्न किया है। उनके निबन्धों में विचार-मूलमता और अर्थ-गाम्भीर्य का सर्वप्रथम प्रयोग हुआ। पं० अम्बिकादत्त व्यास और गोविन्दनारायण मिश्र भी इसी श्रेणी के लेखक थे।

द्विवेदी-युग आधुनिक हिन्दीसाहित्य का परिमार्जन युग कहा जाता है। भारतेन्दु-युग की भाषागत अव्यावहारिकता, शिथिलता और या-करणहीनता को दूर कर उसे प्रौढ, परिष्कृत और अभिव्यञ्जनक्षम बनाने के उद्देश्य से द्विवेदी जी ने सरस्वती के सम्पादन-कार्य को अपनाया। अन्य भाषाओं के प्रचलित शब्दों को हिन्दी का पुट देकर ही उन्होंने स्वीकार किया और बँगला आदि के शब्दों, मुहावरों के आधिपत्य से भाषा का पिड छुड़ा कर उसका संशोधन किया। 'भाषा को अनस्थिरता' आदि निबन्ध लिख कर उन्होंने अन्य लेखकों को भी परिष्कृत-भाषा लिखने के लिये प्रोत्साहित किया। स्वतन्त्र रूप से विभिन्न विषयों पर उन्होंने अनेक विचारात्मक निबन्ध लिखे। 'विचार-विमर्श', 'साहित्य-संदर्भ', 'लेखाञ्जलि', 'प्राचीन कवि और पण्डित' आदि उनके विचारात्मक निबन्धों के संग्रह हैं। 'बेकनविचारावली' के नाम से उन्होंने बेकन के निबन्धों का अनुवाद भी निकाला।

द्विवेदी जी के निबन्ध दो प्रकार के हैं—प्रथम मनोरञ्जक और कौतूहलपूर्ण विषयों पर आधारित, दूसरे गहनविषय वाले। भाषानुकूल-शैली की द्विवेदी जी ने दृढ़ प्रतिष्ठा की। पहले प्रकार के निबन्धों में

## भूमिका

उर्दू, फारसी, अंग्रेजी आदि के शब्दों, प्रचलित मुहावरों तथा हास्य और व्यङ्ग्यपूर्ण कथनों द्वारा उन्होंने शैली में मजीबता और रोचकता का समावेश किया है, प्रसाद तथा आंज के उचित सामञ्जस्य से उन्होंने उसमें प्रेपणीयता की प्राणप्रतिष्ठा की। दूसरे प्रकार के निबन्धों में, मुहावरे तथा अन्य भाषाओं के शब्द बहुत कम हो गये हैं, व्यङ्ग्य और हास्य के छोट्टे भी नहीं पड़ते; संस्कृतशब्दावली का प्रयोग बढ़ता चला जाता है फिर भी विषयवस्तु का प्रवाह शिथिल नहीं हो पाता, उसमें दुरुहता नहीं आती। वास्तव में इनके निबन्धों में विषयवस्तु का नहीं शैली का महत्व अधिक है। अपने निबन्धों द्वारा उन्होंने भाषा के स्वरूप की अस्थिरता, अव्यावहारिकता, ग्राम्यता और च्युतसंस्कृति को दूर कर ऐसी शैलियों का सूत्रपात किया जिससे वर्तमान युग में निबन्ध-शैली का चरम विकास सम्भव हो सका।

बाबू श्यामसुन्दरदास ने, उर्दू, फारसी आदि भाषाओं के शब्दों से अपनी शैली को रोचक बनाना उचित नहीं समझा और संस्कृत शब्दों की प्रधानता रख कर भी उसे दुर्बोध होने से बचाये रखा। उनकी शैली में तार्किकता है जिसके कारण विषयप्रतिपादन प्रभावोत्पादक हो गया है। स्पष्टीकरण के लिए उन्होंने व्यास शैली को अपनाया और निबन्ध-शैली में गम्भीरता का गहरा पुट दिया जो प्रायः अब तक नहीं आ पाया था।

विचारात्मक निबन्धों का चरमोत्कर्ष आचार्य शुक्ल के निबन्धों में सम्पन्न हुआ है। उन्होंने स्वयं निबन्धविषयक कुछ मान्यताएँ निर्धारित की जो हिन्दी जगत् में प्रायः सर्वमान्य स्वीकृत हो चुकी हैं। उनकी दृष्टि से शुद्ध विचारात्मक निबन्धों का चरमोत्कर्ष वहीं कहा जा सकता है जहाँ एक-एक पैराग्राफ में विचार दबा-दबा कर ठूँसे गये हों और एक-एक वाक्य किसी सम्बद्ध विचारखण्ड को लिये हों। निबन्धों की शैली के विषय में उन्होंने लिखा है “खेद है, समास शैली पर ऐसे

## हिन्दीनिबन्ध-शैली का विकास

विचारात्मक निबन्ध लिखने वाले जिनमें बहुत ही चुस्त भाषा के भीतर एक पूर्ण अर्थ-परम्परा कसी हो, दो चार लेखक हमें न मिले।” यह कहने की आवश्यकता नहीं कि शुक्ल जी के निबन्ध उनकी मान्यताओं की कसौटी पर सवा सौलह आने खरे उतरने हैं और यह कहना अतिशयोक्ति पूर्ण न होगा कि इस दृष्टि से उनकी टक्कर का निबन्ध-लेखक हिन्दी ने अभी तक पैदा नहीं किया। विचारों से लबालब भरे हुए होने पर भी शुक्ल जी के निबन्धों में भावात्मकता के स्रोत स्थल-स्थल पर प्रवाहित होते हुए मिलेंगे। यह तथ्य उनके ‘चिन्तामणि’ के निवेदन से ही स्पष्ट है जिसके अनुसार “अपना रास्ता निकालती हुई बुद्धि जहाँ कहीं मार्मिक या भावाकर्षक स्थलों पर पहुँची है वहाँ हृदय थोड़ा बहुत रमता और अपनी प्रवृत्ति के अनुसार कुछ कहता गया है।” विषय और व्यक्तित्व प्रकाशन का ऐसा अपूर्व सामञ्जस्य हिन्दी-निबन्धों में खोजे न मिलेगा। कोई निबन्ध, कोई पैराग्राफ, कोई वाक्य ऐसा न होगा जिसमें शुक्ल जी की आत्मा विद्यमान न हो। पंक्ति-पंक्ति बोल-बोल कर कहती है, मैं शुक्ल जी की शैली-मुद्रा से अङ्कित हूँ।

इनकी शैली समास शैली है, जिसमें व्यर्थ का एक भी शब्द न मिलेगा। भावमयता के साथ तार्किकता और पाण्डित्य के साथ स्वाभाविकता का उसमें अनोखा योग है। व्याकरण की पूर्ण शुद्धता और विरामादि चिह्नों की यथास्थान स्थिति के प्रति ये बड़े सतर्क रहे हैं। और इस सबको हम एक शब्द में इस प्रकार कह सकते हैं कि वे यथार्थतः ‘आचार्य’ हैं।

इस प्रकार हिन्दी में विचारात्मक निबन्धों के लिए बाबू श्याम-सुन्दरदास की व्यास शैली और आचार्य शुक्ल की समास शैली आदर्श रूप में प्रतिष्ठित हुई है। हिन्दी के आधुनिक निबन्धकार प्रायः इनमें से ही किसी शैली का अनुसरण करते हैं किन्तु इधर अनेक

उदीयमान निबन्धकार अंग्रेजी निबन्धों से अधिक प्रभावित हुए हैं और उनकी शैली पर भी इसका प्रभाव लक्षित होता है।

## अध्यापक पूर्णसिंह के निबन्ध—

( जिस प्रकार विचारात्मक निबन्धों का चरमोत्कर्ष आचार्य शुक्ल के निबन्धों में मिलता है उसी प्रकार भावात्मक निबन्धों का चरम विकास अध्यापक पूर्णसिंह के निबन्धों में परिलक्षित होता है। उनके जोड़ का भावात्मक निबन्ध-लेखक हिन्दी में शायद ही कोई हो। गुलेरी जी केवल तीन कहानियाँ लिख कर हिन्दी के अमर कहानीकार बन गये तो अध्यापक जी केवल ६ निबन्ध लिख कर हिन्दी के भावात्मक निबन्ध-लेखकों में ध्रुवपद प्राप्त कर गये। परिमाण के ऊपर गुण की महत्ता न होने के उल्लान्त प्रमाण स्वरूप ये दोनों साहित्यकार सर्वदा याद किये जायेंगे।

विषय की दृष्टि से पूर्णसिंह जी के निबन्ध 'सामाजिक' कहे जा सकते हैं। किन्तु यहाँ 'सामाजिक' शब्द का प्रयोग उसके वर्तमान अति प्रचलित अर्थ में नहीं है, हमारे कहने का आशय है कि उनके निबन्धों में लोकमंगल की भावना कूट-कूट कर भरी है। 'सच्ची वीरता' और 'पवित्रता' जैसे चारित्रिक निबन्ध भी व्यष्टि की अपेक्षा समष्टि-को ही दृष्टिकोण में रचकर लिखे गये हैं, उनमें सरदार साहब का व्यापक दृष्टिकोण आद्योपान्त समाया हुआ मिलेगा। वे जाति, धर्म, देश आदि की सकीर्ण भावनाओं से बहुत ऊपर थे, उनका हृदय प्रेम का स्रोत था। मानवता के वे पुजारी थे, बाह्य आडम्बर से वे घृणा करते थे और सन्त कवियों की तरह निर्भीक होकर पाखण्ड पर कटाक्ष करते थे परन्तु उनके व्यङ्ग्य भी नीरस नहीं, कटुता का उनमें नाम नहीं। होता भी कैसे? उनका हृदय प्रेम का लहराता हुआ मानसरोवर था। फिर उससे जो भी शब्द-मुक्ता निकलते उनमें सरसता क्यों न होती? उन्होंने

कथन की अपेक्षा करनी पर बल दिया है। केवल देवता, ऋषि, योगी, महापुरुष बनने के लिये जोर नहीं दिया। उनका आदर्श था 'मानव'—साधारण मानव, दुनिया के प्रपञ्च से रहित सरल मानव—इसलिए वे कहते हैं—

“जब हम मनुष्य बन जायेंगे तब तो तलवार भी, ढाल भी, जप भी, तप भी, ब्रह्मचर्य भी, वैराग्य भी सब के सब हमारे हाथ के कंकणों की तरह शोभायमान होंगे, और गुणकारक होंगे। इस वास्ते बनो पहले साधारण मनुष्य, जाते-जागते मनुष्य, हँसने-खेजते मनुष्य, नहाए धोए मनुष्य, प्राकृतिक मनुष्य, जानवाले मनुष्य, पवित्र-हृदय, पवित्र-बुद्धि वाले मनुष्य, प्रेमभरे, रसभरे, दिलभरे, जानभरे, प्राणभरे मनुष्य। हल चलाने वाले, पसीना बहाने वाले, जान गँवाने वाले, सच्चे, कपट-रहित, दरिद्रता-रहित, प्रेम से भाँगे हुए, अग्नि से सूखे हुए मनुष्य।” और सचमुच वे ऐसे ही थे। !

अध्यापक जी का व्यक्तित्व उनके निबन्धों में सर्वत्र प्रतिबिम्बित हुआ है, बल्कि कहना उचित होगा कि उसके अतिरिक्त और उनमें है ही क्या ? जीवन के प्रति उनका दृष्टिकोण, नैतिक और सामाजिक मान्यताएँ, आर्थिक आदर्श, विभिन्न धर्मों के प्रति समन्वयात्मक भावना आदि तो उनमें आ ही गये हैं साथ ही उनकी सात्विकता, सगुणता, देश-प्रेम आदि के भाव भी स्थान-स्थान पर दीख पड़ेंगे जिनसे रोचकता ही नहीं मर्मस्पर्शिता और प्रभावशालिता भी बढ़ गयी है। निबन्धा में उनका भावात्मक रूप प्रकट हुआ है फिर भी उन्हें केवल स्वप्न-द्रष्टा ही समझना भूल होगा। व्यावहारिक जीवन में वे कर्मठता के पक्षपाती हैं। यथार्थ में परिणत न हो सकने वाला आदर्श उनका दृष्टि में केवल मस्तिष्क का भार है, बल्कि इस भवसागर में गले में बँधी हुई शिला है जो एक दिन जरूर अपने साथ ले डूबेगी—

“तारागणों को देखते देखते भारतवर्ष अब समुद्र में गिरा कि गिरा।

## भूमिका

एक कदम और, और धम नीचे ! कारण इसका केवल यही है कि यह अब तक अटूट स्वप्न में देखता रहा है और निश्चय करता रहा है कि मैं रोटी के बिना जी सकता हूँ, हवा में पद्मासन जमा सकता हूँ। यह इसी प्रकार के स्वप्न देखता रहा, परन्तु अब तक न गंसार ही की और न राम ही की दृष्टि में इसका एक भी बचन सिद्ध हुआ। यदि अब भी इसकी निद्रा न खुली तो बेधड़क शंख फूँक दो ! कूच का घड़ियाल बजा दो ! कहदो, भारतवासियों का इस असार संसार में कूच हुआ।”

न यह आक्रोश ही है और न चेतावनी ही, दुर्दशा की उमम में हृदयगगन में छाया हुआ देश-प्रेम का सवन घन बरस पड़ा है। और देखिए—

“भारतनिवासियों ने एक प्रकार की पुड़िया और गोली बनाई है जिसको खाते ही चन्द्रमा चढ़ जाता है। ज्ञान हो जाता है। वह हो पास तो फिर कुछ दरकार नहीं होता। ओ जगत् वालो ! बड़ी भारी ईजाद हुई है। छोड़ दो अपनी पदार्थ विद्या, जाने दो यह रेल, यह जहाज, ये नये नये उड़न खटोले, हवा में तैरने वाले लोहे के जजोरे। प्रकृति की क्यों छान-बीन कर रहे हो ? इससे क्या लाभ ? हृपाकेश में वह अनमोल गोली बिकती है, और सिर्फ दो चपाती के दाम, जिस गोली के खाने से सारे जन्म कट जाते हैं; सब पाश टूट जाते हैं, और जीवन मुक्त हो सारे संसार को अपनी उंगलियों पर नचा सकोगे; बिना नेत्र के, बिना बुद्धि के, बिना विद्या के, बिना हृदय के, बुद्धवाले निर्वाण, पतंजलिवाली कैवल्य, वैशेषिकवाली विशेष, वेदान्तवाली विदेह मुक्ति मिलती है। बेचनेवाले देखो वे जा रहे हैं, तीन-चार पुस्तकें हाथ में हैं और तीन-चार बगल में। आपको इन दो पुस्तकों के पढ़ने से ह ब्रह्म की प्राप्ति हो गई है, ज्ञान हो गया है।” कर्म-विहीन दर्शन पर ऐसा करारा व्यङ्ग्य हो सकता है ? कबीर साहब अपनी वाणी को

मुलायम बनाकर आये मालूम होते हैं । और तप या धर्मकी यह व्याख्या कि—

“पहाड़ों पर चढ़ने से प्राणायाम हुआ करता है, समुद्र में तैरने से नेती धुलती है; आंधी, पानी और साधारण जीवन के ऊँच-नीच, गरमो-सरदो, गरीबी अमीरी को झेलने से तप हुआ करता है । आध्यात्मिक धर्म के स्वप्नों की शोभा तभी लगती है जब आदमी अपने जीवन-का धम पालन करे ।” कृष्ण के कर्मयोग का प्रथम सोपान ही तो है, निःसन्देह कोरी आध्यात्मिकता मृगतृष्णा है और कोरी कर्मठता अनन्त दलदल । दोनों में से एक भी स्पृहणीय नहीं, इनका उचित समन्वय ही जीवन का ठोस आधार बन सकता है । यही लेखक का उद्देश्य है ।

वास्तव में भारतीय संस्कृति के स्वस्थ रूप में सरदार साहब की आस्था है । नारी समस्या का भी इन्होंने अपने ढंग से समाधान प्रस्तुत किया है नारी और पुरुष के क्षेत्रों में वे अन्तर मानते हैं और उसके एकीकरण को गृहस्थ जीवन की अशान्ति का कारण बताते हैं—

“ऐसा मालूम होता है कि योरोप का कन्यायें भी दिल देने के भाव को बहुत कुछ भूल गईं हैं । इसी से अलबेली भोली कुमारिकायें पारलियामेंट के झगड़ों में पड़ना चाहती हैं, तलवार और बन्दूक लटका कर लड़ने मरने को तैयार हैं । इससे अधिक यूरोप के गृहस्थ-जीवन की अशान्ति का और क्या सुबूत हो सकता है ।”

किन्तु साथ ही ‘नारी की साँई परे अंधा होत भुजंग’ का सहारा ले उसको तिरस्कार की दृष्टि से देखने वाले वैरागियों को भी वे पाखण्डी समझते हैं—“स्त्री का मुख देखना पाप है । बड़े-बड़े वैराग्य-के ग्रन्थ खोल, गेरुआ रंगे हम अपनी माता बहिन और कन्याओं को नग्न कर करके उनके हड्डी-माँस को नस-नस को गिन-गिन कर तिरस्कार करते हैं ।” उनका विश्वास कि “जब तक आर्य-कन्या इस देश के घरों और दिलों पर राज्य नहीं करती तब तक इस देश में पवि-

## भूमिका

त्रता नहीं आती। जब तक देश में पवित्रता नहीं आती, तब तक बल नहीं आता।” “यत्र नार्थस्तु पूज्यन्ते रमन्ते तत्र देवताः” के ही अनुसार है।

शारीरिकश्रम को अध्यापक जी श्रद्धा की दृष्टि से देखते हैं और प्रत्येक व्यक्ति के लिए अनिवार्य मानते हैं। जो श्रम कर क नहीं खाता वह उनकी दृष्टि में समाज के ऊपर भार ही नहीं उसका शोषक भी है। घरेलू उद्योग धन्धों को वे भारत की उन्नति के लिये आवश्यक समझते हैं। उनका विचार है कि “यदि भारत की (तीस) करोड़ नर-नारियों की उँगलियाँ मिल कर कारीगरी के काम करने लगे तो उनकी मजदूरी की बदौलत कुबेर का महल उनके चरणों में आप ही आप आ गिरे।” मशीनों का आधिपत्य उन्हें बहुत खलता है और वास्तव में “भारतवर्ष जैसे दरिद्र देश में मनुष्य के हाथों की मजदूरी के बदले कलों से काम लेना काल का डंका बजाना होगा।” इससे कोई भी विवेकी अर्थशास्त्री असहमत न हो सकेगा।

पूर्णसिंह जी के निबन्धों में उनका विस्तृत अनुभव, गहन निरीक्षण और गम्भीर अध्ययन सर्वत्र दृग्गोचर होगा। अनेकानेक सामाजिक, धार्मिक, दार्शनिक, पौराणिक, ऐतिहासिक, सांस्कृतिक, वैज्ञानिक एवं साहित्यिक संदर्भों का समावेश होने से उनमें रोचकता के साथ विश्वसनीयता भी आ गयी है। विभिन्न धर्मों और सभ्यताओं की चिन्तन-धाराओं का संगम इनकी विचारधारा को तीर्थराज बनाये हुए हैं। मानवता, गुण, पवित्रता और श्रेष्ठ-आचरण किसी जाति अथवा धर्म-विशेष से सम्बद्ध व्यक्तियों की ही होती नहीं हैं अपितु वे सब जाति, सब धर्मों और देशों के लोगों में पाये जा सकते हैं। अतः सच्चे गुणी का आदर करना चाहिए, धर्मान्धता के कारण किसी को नीच समझना मानवता नहीं, इसी भाव को लेखक ने कितनी चमत्कारी, रहस्यमय, लाक्षणिक और ओजपूर्ण भाषा में प्रकट किया है—“जिस समय

बुद्धदेव ने स्वयं अपने हाथों से हाफिज़ शीराजी का सीना उलट कर उसे मौन आचरण का दर्शन कराया उस समय फारस में मारे बौद्धों को निर्वाण के दर्शन हुए और सब के सब आचरण की सभ्यता के देश को प्राप्त हो गए। जब पैगम्बर मुहम्मद ने ब्राह्मण का चीरा और उसके मौन आचरण को नंगा किया तब सारे मुसलमानों को आश्चर्य हुआ कि काफिर में मोमिन किस प्रकार गुप्त था। जब शिव ने अपने हाथ से ईमा के शब्दों को परे फेंक कर उसकी आत्मा के नङ्गे दर्शन कराये तब हिन्दू चकित हो गये कि वह नग्न करने अथवा नग्न होने वाला उनका कौन सा शिव था ? हम तो एक दूसरे में छिपे हुए हैं।”

गद्यशैली का प्रधान उद्देश्य प्रभावोत्पादन है। श्रोता या पाठक को प्रभावित करने के लिये लेखक अनेक प्रकार की योजनाएँ करता है जिनका स्वरूप शैलीकार के व्यक्तित्व और अध्ययन आदि पर निर्भर होता है। अध्यापक पूर्णसिंह की शैली उनके व्यक्तित्व के अनुरूप ही सरल एवं आडम्बरहीन है। उनके शब्द कण्ठ से नहीं हृदय से निकलते हैं और सीधे हृदय में पैठ जाते हैं। उनकी बात में सचाई का बल होता है। उनके हृदय की समस्त वृत्तियाँ वर्य विषय पर आकर केन्द्रित हो जाती हैं और स्वयं वे ‘तदाकार परिणति’ को प्राप्त हो जाती हैं, यही कारण है कि पाठक का हृदय उनकी रचना में रमता चला जाता है क्योंकि उमे हृदय की ही वस्तु उसमें मिलती हैं—‘ज्यों बढ़री अँखियाँ निरखि अँखिन नों सुख होत।’ पाठकों के हृदय में भावोद्बेक करने के लिए वे ऐसा वातावरण उपस्थित करते हैं कि हृदय मंत्रमुग्ध-सा उस ओर खिंचा चला जाता है। एक उदाहरण लाजिये—

“गाढ़े की एक कमीज को एक अनाथ विधवा सारी रात बैठ कर सीती है; साथ ही साथ वह अपने दुख पर रोती भी है—दिन को खाना न मिला। रात को भी कुछ मयस्सर न हुआ। अब वह एक-एक टाँके पर आशा करती है कि कमीज कल तैयार हो जायगी; तब

## भूमिका

कुछ तो खाने को मिलेगा। जब वह थक जाती है तब ठहर जाती है। सुई हाथ में लिये हुए है, कमीज घुटने पर बिछी हुई है, उसकी आँखों को दशा उस आकाश की जैसी है जिसमें बादल बरस कर अभी बिखर गये हैं। खुली आँखें ईश्वर के ध्यान में लीन हो रही हैं। कुछ काल के उपरान्त 'हे राम' कह उसने फिर सीना शुरू कर दिया इस माता और बहन की सिली हुई कमीज मेरे लिये मेरे शरीर का नहीं मेरी आत्मा का वस्त्र है।' इस बात को इस तरह भी कहा जा सकता था कि 'एक दुखी विधवा के हाथ की सिली कमीज मेरी आत्मा का वस्त्र है।' किन्तु इससे अभोष्ट प्रभाव उत्पन्न नहीं हो सकता था, इसीलिये लेखक ने अपनी प्रतिभा से उस विधवा को निरीह अवस्था में पाठक के सामने लाकर बिठा दिया है, उसकी परिस्थितियों और वातावरण को भी सजीव कर दिया है, इतना सजीव कि काह्यौँ से काह्यौँ पाठक भी उससे कतरा कर नहीं निकल सकता, पत्थर में पत्थर दिल भी जिसे देख कर रो देगा—

**‘अपि प्रावा रोदित्यपि दलति वज्रस्य हृदयम्।’**

उनके सभी निबन्ध ऐसे चित्रों से भरे पड़े हैं। 'पवित्रता' शीपेंक निबन्ध में यह शैली पराकाष्ठा को पहुँच गयी है।

शैली में भावानुकूल मोड़ देने में ये बड़े सिद्ध हस्त हैं। वर्णनात्मक प्रसङ्गों में इनकी शैली बड़ी प्रवाहमयी होती है, वाक्य छोटे-छोटे, प्रभाव डालने के लिये वाक्य और शब्दों के स्थानों में व्यतिक्रम, क्रिया का लोप आदि अनेक विशेषताएँ वहाँ देख पड़ेंगी—

“एक दफे एक राजा जंगल में शिकार खेलते-खेलते रास्ता भूल गया। उसके साथी पीछे रह गये। घोड़ा उसका मर गया। बंदूक हाथ में रह गई। रात का समय आ पहुँचा। देश बर्फानी, रास्ते पहाड़ी। पानी बरस रहा है। रात आँधेरी है। आँले पड़ रहे हैं। ठंडी हवा उसके हड्डियों तक को हिला रही है।”

अपने मत के समर्थन अथवा प्रतिपादन में इनके वाक्य लम्बे तथा एक से अनेक उपवाक्यों के परिकर से सशक्त होते हैं जिनकी गति में इतनी तीव्रता होती है कि पाठक को रुक कर सोचने का मौका ही नहीं मिलता और बात समाप्त होते-होते वह एक विचित्र-सी स्थिति में अपने आपको कथन के समर्थन की ही ओर झुका हुआ पाता है—

“यदि एक ब्राह्मण किसी डूबती कन्या की रक्षा के लिए—चाहे वह कन्या किसी जाति की हो, जिस किसी मनुष्य का हो, जिस किसी देश की हो—अपने आपको गंगा में फेक दे—चाहे फिर उसके प्राण यह काम करने में रहे चाहें जाये—तो इस कार्य के प्रेरक आचरण की मोनमयी भाषा, किस देश में, किस जाति में, और किस काल में, कौन नहीं समझ सकता ?”

आचार्य रामचन्द्र शुक्ल के समान सूत्रात्मक वाक्यों का भी प्रयोग इन्होंने किया है जिनकी व्याख्या सहज नहीं—“मजदूर! तो मनुष्य के समष्टिरूप का व्यष्टिरूप परिणाम है।”

“मजदूरी करना जीवन यात्रा का आध्यात्मिक नियम है।”

“प्रेम की भाषा शब्दरहित है।”

आदि वाक्य इसी प्रकार के हैं।

मिथ्या गर्व आदि बातों से—जिन्हें अध्यापक पूर्ण सिंह अनुचित समझते हैं—खीन कर कहीं कहीं इन्होंने कट्टकियों का भी प्रयोग किया है, किन्तु इस विषय में इनका उद्देश्य उत्तेजना का संचार कर अनुचित से उचित की ओर प्रवृत्ति होने की प्रेरणा देने के कारण प्रशंसनीय ही है गहणीय नहीं—उदाहरण लीजिये—

“किसी ने इन (भारतवासी) काठ के पुतलों को जो कहा कि तुम ऋषि सन्तान हो, ‘बस अब हम ऋषि सन्तान हैं,’ इसकी माला फिरनी शुरू हुई है……वे ऋषि अब होते तो सच कहता हूँ हमको स्तेच्छ

## भूमिका

कह कर हमसे धर्म-युद्ध रचते और हमें इस देश से निकाल कर इस धरती को फिर से आर्यभूमि बनाते ।”

तुकदार शब्दों के प्रयोग और विरुद्ध-सी उक्तियों द्वारा भी इन्होंने कहीं-कहीं चमत्कार उत्पन्न किया है :—

“वे काली-काली मर्शाने ही काली बन कर उन्हीं मनुष्यों का भक्षण कर जाने के लिए मुख खोल रही हैं ।”

“कामनासहित होते हुए भी मजदूरी निष्काम होती है ।”

“कायर पुरुष कहते हैं—‘आगे बड़े चलो ।’ वीर कहते हैं—  
पीछे हटे चलो ।”

“राजा में फकीर छिपा है और फकीर में राजा, बड़े-बड़े पंडित में मूर्ख छिपा है और मूर्ख में पंडित, वीर में कायर और कायर में वीर होता है, पापी में महात्मा और महात्मा में पापी डूबा हुआ है ।”

कहीं ध्वन्यात्मक प्रश्नों को झड़ी से और कहीं रूपक और उपमाओं की लड़ी से अपने वक्तव्य में जान डाल देना सरदार साहब को खूब आता था । यथार्थ विषयवस्तु इस प्रकार के स्थलों पर गति हीन हो कर स्थिर-सी हो जाती है, फिर भी काव्यात्मक चमत्कार का प्रभाव पाठक के मन को रमाये रहता है—

“तीक्ष्ण गरमी से जलेभुने व्यक्ति आचरण के काले बादलों की बूँदा बाँदी से शीतल हो जाते हैं । मानसोत्पन्न शरदऋतु से क्लेशातुर हुए पुरुष इसकी सुगन्धिमय अटल वसंत ऋतु के आनन्द का पान करते हैं । आचरण के नेत्र के एक अश्रु से जगत् भर के नेत्र भीग जाते हैं । आचरण के आनन्द-नृत्य से उन्मदिष्णु होकर वृद्धों और पर्वतों तक के हृदय नृत्य करने लगते हैं ।”

लाक्षणिकता उनकी शैली का प्राण है । इस प्रकार का शैलीकार हिन्दी-जगत् में दूसरा नहीं हुआ यह स्वीकार करना ही पड़ेगा । वास्तव में उनकी लाक्षणिकता ऊपर से थोपी गयी वस्तु नहीं है अपितु भावों के

उमड़ते हुए सागर के शतमुख होकर बह निकलने से उसका समावेश खुदबखुद हो गया है, ठीक उसी तरह जिस तरह, उपमा, रूपक, स्मरण, विरोधाभास आदि अनेक अलङ्कार उनकी रचना में अनजाने ही जड़ गये हैं।

इनका भाषानियमक दृष्टिकोण अत्यन्त उदार रहा है। अंग्रेजी और उर्दू के साहित्य और भाषा का गहन अध्ययन इनकी शैली में अपना रङ्ग देकर फूटा है। अंग्रेजी साहित्य की अनेक साहित्यिक कृतियाँ एवं तदन्तर्गत पात्रा का यथा स्थान संकेत करके तथा उर्दू कवियों की उक्तियाँ उद्धृत करके इन्होंने अपने विषय की पुष्टि की है और उर्दू तथा अंग्रेजी के प्रचलित शब्दों को मुक्तहस्त स्वीकार कर अपनी शैली को 'सैक्युलर' बना दिया है—नुस्खा, बदहज्मी, बे-सरो-सामान, नामोनिशान, दीदार, बर्फानी, समों, मयस्सर, तरोताजा, कलाम, गुस्ताखी, शिकस्त, जवाल, इलहाम, लिबास, अब्वल, पर्दानशीन, तूफान, कुदरत, आदि अनेक शब्द उनकी रचना में मिलेगे। संस्कृत के तत्सम, समस्त, सन्धिज सभी प्रकार के शब्द भी उनके निबन्धों में प्रयुक्त हुए हैं—उदारहृदया, सम्पन्ना, ज्यातिष्मती, मानसात्पन्न, उन्मदिष्णु, गौरवान्वित, औदार्य आदि शब्द गिनाये जा सकते हैं किन्तु उर्दू के शब्दों की अपेक्षा ये बहुत कम अनुपात में प्रयुक्त हुए हैं। वास्तव में 'साहित्यिक भाषा' उनका लक्ष्य था, अतः जनसाधारण में प्रचलित बोधगम्य शब्दावली को ही इन्होंने अधिक प्रश्रय दिया है। संस्कृत के शब्द तो उनकी काव्योचित भावुकता की लपेट में खुद चले आये हैं। चोचला और फलोंग जैसे ठेठ बोलचाल के ग्रामीण, और बेरस जैसे द्विज शब्द भी उनकी रचना में मिल जाते हैं। 'मुख मोड़ना', 'खाक-झानना', 'समों बाँधना', 'आँखों में धूल डालना', 'कूच करना', 'मैदान हाथ में होना' आदि मुहावरोद्गरा भी शैली में सर्जावता उत्पन्न करने का सफल प्रयास उन्होंने किया है। सस्पेस यह है कि भावों को अधिक से

## भूमिका

अधिक गम्य बनाने के लिए, जहाँ कहीं भी, जो कुछ भी साधन उन्हें मिला उसका उन्होंने बेहिचक प्रयोग किया है ।

बात शायद अधिक बढ़ती जा रही है, वास्तव में अध्यापक पूर्यासिंह के गिने-चुने निबन्धों के वैशिष्ट्य-उद्घाटन के लिए गिनी-चुनी पंक्तियाँ पर्याप्त नहीं, यह तो एक स्वतन्त्र पुस्तिका का विषय है, पर जब बात आ पड़ती है तो बहुत कम कहते-कहते भी बहुत कुछ हो जाता है । अतः दो एक आवश्यक बातों की ओर संकेत कर यह वक्तव्य समाप्त करना है ।

ऊपर सरदार साहब की शैली की विशेषताएँ बताने का प्रयास किया गया है । किन्तु इनके आधार पर यह नहीं समझ लेना चाहिए कि उनकी शैली में सब गुण ही गुण हैं । कहीं कहीं पर उनका सबसे बड़ा गुण—भावुकता—ही भावों के मार्ग में आड़ा बन कर अड़ गया है और शैली का सबसे बड़ा दोष बन गया है । ऐसे स्थलों पर भाव रहस्यमय से हो गये हैं जो साधारण तो क्या विशिष्ट पाठक की पकड़ में भी मुश्किल से ही—और शायद नहीं—आ पायेंगे । उदाहरण के रूप में पीछे उद्धृत बुद्धदेव और हाफिजशीराजी-आदि वाला अवतरण प्रस्तुत किया जा सकता है । कहीं कहीं तो उनकी भावुकता इतनी बढ़ गयी है और उसकी ‘रमक’ इतनी देर तक सवार रहती है कि सन्तुलित भावों वाला पाठक गूढ़ तथा असम्बद्ध से लम्बे-लम्बे भावमय कथनों को ‘प्रलाप’ जैसा समझने लग जाय तो आश्चर्य नहीं । भाषाविषयक स्वलन भी मिलते हैं । कहीं-कहीं कारक सूचक विभक्तियों का ऐसा जमघट हो गया है कि मूलभाव तक पहुँचने में पाठक को बड़ी कठिनाई होती है, यथा—

“आचरण के विकास के लिये नाना प्रकार की सामग्रियों का, जो संसारसंभूत शारीरिक, प्राकृतिक, मानसिक और आध्यात्मिक जीवन में वर्तमान हैं, उन सबकी, सबका ( ? )—क्या एक पुरुष और क्या

एक जाति के आचरण के विकास के साधनों के सम्बन्ध में विचार करना होगा।”

व्याकरणविषयक स्वलन भी यत्र तत्र मिलते हैं जैसे—“इसकी उपस्थिति से मन और हृदय की ऋतु बदल जाते हैं,” इस वाक्य में क्रिया का रूप स्त्रीलिङ्ग के स्थान में पुंल्लिङ्ग प्रयुक्त हुआ है। भाषा-विशेषज्ञों या अलङ्कार-शास्त्रियों को ये दोष बहुत कुछ अखर सकते हैं परन्तु सच तो यह है कि इन निबन्धों की अनगिन विशेषताओं में इस प्रकार के स्वलन नगण्य ही हैं—“एकोऽपि दोषो गुणसन्निपाते निमज्जतीन्दोः किरणेष्विवाङ्कः।”

एक बात इस संकलन के सम्बन्ध में भी। अध्यापक पूर्णसिंह के निबन्धों का यह सर्व प्रथम संकलन और सम्पादन है। इसीसे यथेष्ट महत्त्वपूर्ण है, फिर इसके सम्पादक का हिन्दी-संस्कृत के साहित्य का मर्मज्ञ होना सोने में सुगन्ध का योग करता ही है, फिर भी ऐसा प्रतीत होता है कि यह कार्य बड़ी हड़बड़ी या जल्दी में सम्पन्न हुआ है। अनेक स्थलों पर टिप्पणी की आवश्यकता है। लेखक के जिन स्वलन-सूचक प्रयोगों और कथनों पर सम्पादक ने जो प्रश्न-सूचक चिह्न लगाये हैं, ध्यान देने पर उनमें से कई एक व्यर्थ सिद्ध होते हैं। फिर भी सब कुछ मिला कर यह पुस्तक संग्रहयोग्य है। आशा है इसका दूसरा संस्करण और भी अधिक परिष्कृतरूप में सामने आवेगा।

विजया दशमी, २०१३।

—हरवंशलाल शर्मा

( एम्० ए०, पीएच० डी०, डी० लिट्० )

# निबन्ध



|                                   |        |
|-----------------------------------|--------|
| सच्ची वीरता                       | १-१६   |
| कन्या-दान                         | १७-३७  |
| आचरण की सभ्यता                    | ३८-३५  |
| मजदूरी और प्रेम                   | ५४-७१  |
| अमेरिका का मस्त जोगी वाल्ट हिटमैन | ७२-८७  |
| पवित्रता                          | ७८-१०४ |

## सच्ची वीरता—

सच्चे वीर पुरुष धीर, गम्भीर और आजाद होते हैं । उनके मन की गम्भीरता और शान्ति समुद्र की तरह विशाल और गहरी, या आकाश की तरह स्थिर और अचल होती है । वे कभी चंचल नहीं होते । रामायण में वाल्मीकिजी ने कुम्भकर्ण की गाढ़ी नींद में वीरता का एक चिह्न दिखलाया है । सच है, सच्चे वीरों की नींद आसानी से नहीं खुलती । वे सत्त्वगुण के क्षीर समुद्र में ऐसे डूबे रहते हैं कि उनको दुनिया की खबर ही नहीं होती । वे संसार के सच्चे परोपकारी होते हैं । ऐसे लोग दुनिया के तख्ते को अपनी आँख की पलकों से हलचल में डाल देते हैं । जब ये शेर जाग कर गर्जते हैं, तब सदियों तक इनकी आवाज का गूँज सुनाई देती रहती है, और सब आवाजें बंद हो जाती हैं । वीर की चाल की आहट कानों में आती रहती है और कभी मुझे और कभी तुझे मद-मत्त करती है । कभी किसी की और कभी किसी की प्राण सारंगी वीर के हाथ से बजने लगती हैं ।

देखो, हरा की कंदरा में एक अनाथ दुनिया से छिपकर, एक अजीब नींद सोता है । जैसे गली में पड़े हुए पत्थर की ओर कोई ध्यान नहीं देता, वैसे ही आम आदमियों की तरह इस अनाथ को कोई न जानता था । एक उदारहृदया धन-सम्पन्ना स्त्री की वह नौकरी करता है । उसकी सांसारिक प्रतिष्ठा सिर्फ एक मामूली गुलाम की सी है । मगर कोई ऐसा दैवी कारण हुआ जिससे इस अनजान और बेपहचान गुलाम की बारी आई । उसकी निद्रा खुली । संसार पर मानों हजारों

## सच्ची वीरता

बिजलियाँ गिरीं। अरब के रेगिस्तान में बारूद की तरह आग लग गई। इस वीर की आँखों की ज्वाला इंद्रप्रस्थ से लेकर स्पेन तक प्रज्वलित हुई। उम अज्ञात और गुप्त हरा की कंदरा में सोने वाले ने एक आवाज दी। कुल पृथ्वी भय से काँपने लगी। हाँ, जब पैगम्बर मुहम्मद ने “अल्लाहू अकबर” का गीत गाया तब कुल संसार चुप हो गया। और, कुछ देर बाद, प्रकृति उसकी आवाज की गूँज को सब दिशाओं में ले उड़ी। पत्नी “अल्लाहू” गाने लगे और मुहम्मद के पैगाम को इधर-उधर ले उड़े। पर्वत उसकी वाणी को सुनकर पिघल पड़े और नदियाँ “अल्लाहू, अल्लाहू” का अलाप करती हुई पर्वतों से निकल पड़ीं। जो लोग उसके सामने आये वे इसके दास बन गए। चंद्र और सूर्य ने बारी बारी से उठकर सलाम किया। इस वीर का बल देखिए कि सदियों के बाद भी संसार के लोगों का बहुत सा हिस्सा उसके पवित्र नाम पर जाना है और अपने छोटे से जीवन को अति तुच्छ समझ कर अनदेखे, अनजान केवल सुने-सुनाए, नाम पर कुर्बान कर देने को अपने जीवन का सबसे उत्तम फल समझता है।

✓ सत्त्वगुण के समुद्र में जिनका अंतःकरण निमग्न हो गया वही महात्मा, साधु और वीर हैं। ये लोग अपने क्षुद्र जीवन को परित्याग कर ऐसा ईश्वरीय जीवन पाते हैं कि उनके लिए संसार के कुल अगम्य मार्ग साफ हो जाते हैं। आकाश उनके ऊपर बादलों के छाते लगाता है। प्रकृति उनके मनोहर माथे पर राज-तिलक लगाती है। हमारे असली और सच्चे राजा ये ही साधु पुरुष हैं। हीरे और लाल से जड़े हुए, सोने और चाँदी से जर्क बर्क सिंहासन पर बैठने वाले दुनिया के राजों को तो, जो गरीब किसानों की कमाई हुई दौलत पर पिंडोपजीवी होते हैं, लोगों ने अपनी मूर्खता से वीर बना रखवा है। यह जरी, मखमल और जेवरों से लदे हुए मांस के पुतले तो हरदम काँपते रहते हैं। इन्द्र की तरह ऐश्वर्यवान् और बलवान् होने पर भी

दुनिया के ये छोटे “जार्ज” बड़े कायर होते हैं। क्यों न हो, इनकी हुकूमत लोगों के दिलों पर नहीं होती। दुनिया के राजाओं के बल की दौड़ लोगों के शरीर तक है। हाँ, जब कभी किसी अकबर का राज लोगों के दिलों पर होता है तब इन कायरों की बस्ती में मानों एक सच्चा वीर पैदा हुआ।

एक बागी गुलाम और एक बादशाह की बातचीत हुई। यह कैदी गुलाम दिल से आजाद था। बादशाह ने कहा—“मैं तुमको अभी जान से मार डालूँगा। तुम क्या कर सकते हो?” गुलाम बोला—“हाँ, मैं फाँसी पर तो चढ़ जाऊँगा; पर तुम्हारा तिरस्कार तब भी कर सकता हूँ।” बस इस गुलाम ने दुनिया के बादशाहों के बल की हद दिखला दी। बस इतना ही ज़ोर और इतनी ही शेखी ये झूठे राजे शरीर को दुःख दे और मार-पीटकर अनजान लोगों को डराते हैं। और भोले लोग उनसे डरते रहते हैं। चूँकि सब लोग शरीर को अपने जीवन का केन्द्र समझते हैं; इसलिए जहाँ किसी ने उनके शरीर पर जरा जोर से हाथ लगाया वहाँ वे मारे डर के अधमरे हो जाते हैं; शरीर-रक्षा की गरज से ये लोग इन राजाओं की ऊपरी मन से पूजा करते हैं। जैसे ये राजा वैसा उनका सत्कार! जिनका बल शरीर को जरा सी रस्सी से लटकाकर मार देने ही भर का है, भला, उनका और उन बलवान् और सच्चे राजाओं का क्या मुकाबला, जिनका सिंहासन लोगों के हृदय कमल की पंखड़ियों पर है? सच्चे राजा अपने प्रेम के जोर से लोगों के दिलों को सदा के लिये बाँध देते हैं। दिलों पर हुकूमत करने वाली फौज, तोप, बंदूक आदि के बिना ही वे शाहंशाह-जमाना होते हैं। ऐसे वीर पुरुषों का लक्षण अमेरिका के ऋषि अमरसन ने इस तरह लिखा है :—

“The hero is a mind of such balance that no disturbances can shake his will, but pleasantly,

and as if it were merrily, he advances to his own music, alike in frightful alarms and in the tipsy mists of universal dissoluteness."

[वीर का मस्तिष्क इतना सन्तुलित होता है कि कोई भी बाधा उसकी इच्छा-शक्ति को डिगा नहीं सकती, आनन्द-पूर्वक, हँसते-खेलते वह अपनी ही धुन में मस्त भयानक चेतावनी और मादक विश्वव्यापी विषयासक्ति के बीच समानरूप से निर्लस आगे बढ़ा चला जाता है ।]

मंसूर ने अपनी मौज में आकर कहा कि—“मैं खुदा हूँ ।” दुनिया के बादशाह ने कहा—“यह काफिर है ।” मगर मंसूर ने अपने कलाम को बन्द न किया । पत्थर मार मार कर दुनिया ने उसकी शरीर की बुरी दशा की; परन्तु उस मर्द के हर बोल से यही शब्द निकले—“अनलहक”—“अहं ब्रह्मास्मि” “मैं ही ब्रह्म हूँ” । मंसूर का खूली पर चढ़ना उसके लिये मिर्फ खेल था । बादशाह ने समझा कि मंसूर मारा गया ।

शम्स तबरेज को भी ऐसा ही काफिर समझ कर बादशाह ने हुक्म दिया कि इसकी खाल उतार दो । शम्स ने खाल उतारी और बादशाह को, दरवाजे पर आये हुए कुत्ते की तरह भिखारी समझकर, वह खाल खाने के लिए दे दी । देकर वह अपनी यह गजल बराबर गाता रहा—  
“भीख माँगने वाला तेरे दरवाजे पर आया है; ऐ शाहेदिल ! कुछ इसको दे दे ।” खाल उतार कर फेंक दी ! वाह रे सत्पुरुष !

भगवान् शंकर जब गुजरात की तरफ यात्रा कर रहे थे तब एक कापालिक हाथ जोड़े सामने आकर खड़ा हुआ । भगवान् ने कहा “मोंग, क्या माँगता है ?” उसने कहा—“हे भगवन् ! आज कल के राजा लोग बड़े कंगाल हैं । उनसे अब हमें दान नहीं मिलता । आप ब्रह्मज्ञानी और सबसे बड़े दानी हैं । इसलिए मैं आप के पास आया हूँ । आप अपनी कृपा से मुझे अपना सिर दान करे जिसकी भेट

चढ़ाकर मैं अपनी देवी को प्रसन्न करूँगा और अपना यज्ञ पूरा करूँगा।” भगवान् ने मौज में आकर कहा “अच्छा कल, यह सिर उतार कर ले जाना और काम सिद्ध कर लेना।”

एक दफे दो वीर पुरुष अकबर के दरबार में आये। वे लोग रोजगार की तलाश में थे। अकबर ने कहा—“अपनी अपनी वीरता का सुवृत्त दो।” बादशाह ने कैसी मूर्खता की। वीरता का भला वे क्या सुबूत देते? परन्तु दोनों ने तलवारे निकाल लीं और एक दूसरे के सामने कर उनकी तेज धार पर दौड़ गये और वहीं राजा के सामने क्षण भर में अपने खून में डेर हो गये।

ऐसे देवी वीर रुपया, पैसा माल, धन का दान नहीं दिया करते। जब वे दान देने की इच्छा करते हैं तब अपने आपको हवन कर देते हैं। बुद्ध महाराज ने जब एक राजा को मृग मारते देखा तब अपना शरीर आगे कर दिया जिममें मृग बच जाय, बुद्ध का शरीर चाहे चला जाय। ऐसे लोग कभी बड़े मौकों का इंतजार नहीं करते; छांटे मौकों का ही बड़ा बना देते हैं।

जब किसी का भाग्योदय हुआ और उसे जोश आया तब जान लो कि संसार में एक तूफान आ गया। उसकी चाल के सामने फिर कोई रुकावट नहीं आ सकती। पहाड़ों की पतलियों तोड़कर ये लोग हवा के बगोले की तरह निकल जाते हैं, उनके बल का इशारा भूचाल देता है और उनके दिल की हरकत का निशान समुद्र का तूफान देता है। कुदरत को और कोई ताकत उनके सामने फड़क नहीं सकती। सब चीजें थम जाती हैं। विधाता भी साँस रोककर उनकी राह को देखता है। यूरोप में जब रोम के पोप का जोर बहुत बढ़ गया था तब उसका मुकाबला कोई भी बादशाह न कर सकता था। पोप की आँखों के इशारे से यूरोप के बादशाह तख्त से उतार दिये जा सकते थे। पोप का सिक्का यूरोप के लोगों पर ऐसा बैठ गया था कि उसकी बात

## सच्ची वीरता

को लोग ब्रह्म-वाक्य से भी बढ़कर समझते थे और पोप को ईश्वर का प्रतिनिधि मानते थे। लाखों ईसाई साधु-सन्यासी और यूरोप के तमाम गिर्जे पोप के हुक्म की पाबन्दी करते थे। जिस तरह चूहे की जान बिल्ली के हाथ में होती है उसी तरह पोप ने यूरोपवासियों की जान अपने हाथ में कर ली थी। इस पोप का बल और आतंक बड़ा भयानक था। मगर जर्मनी के एक छोटे से मंदिर के एक कंगाल पादरी की आत्मा जल उठी। पोप ने इतनी लाला फैलाई थी कि यूरोप में स्वर्ग और नरक के टिकट बड़े बड़े दामों पर विक्रित थे। टिकट बेच बेच कर यह पोप बड़ा विपरीत हो गया था। लूथर के पास जब टिकट बिक्री होने को पहुँचे तब उसने पहले एक चिट्ठी लिखकर भेजी कि ऐसे काम भूँटे तथा पापमय हैं और बन्द होने चाहिये। पोप ने इसका जवाब दिया—“लूथर! तुम गुस्ताखी के इस बदले आग में जिन्दा जला दिये जाओगे।” इस जवाब से लूथर की आत्मा की आग और भी भड़की। उसने लिखा—“अब मैंने अपने दिल में निश्चय कर लिया है कि तुम ईश्वर के तो नहीं किन्तु शैतान के प्रतिनिधि हो। अपने आपको ईश्वर के प्रतिनिधि कहने वाले मिथ्यावादी जब मैंने तुम्हारे पास सत्यार्थ का संदेश भेजा तब तुमने आग और जल्लाद के नामों से जवाब दिया। इससे साफ प्रतीत होता है कि तुम शैतान की दलदल पर खड़े हो, न कि सत्य की चट्टान पर। यह लो तुम्हारे टिकटों के गठे (Emparchmented Lies) मैंने आग में फेंके! जो मुझे करना था मैंने कर दिया; जो अब तुम्हारी इच्छा हो करो। मैं सत्य की चट्टान पर खड़ा हूँ।” इस छोटे से संन्यासी ने वह तूफान यूरोप में पैदा कर दिया जिसकी एक लहर से पोप का सारा जंगी बेड़ा चकनाचूर हो गया। तूफान में एक तिनके की तरह वह न मालूम कहाँ उड़ गया।

महाराज रणजीतसिंह ने फौज से कहा—“अटक के पार जाओ।”

अटक चढ़ी हुई थी और भयङ्कर लहरे उठ रही थी। जब फौज ने कुछ उत्साह जाहिर न किया तब उस वीर को जरा जोश आया। महाराज ने अपना घोड़ा दरिया में डाल दिया। कहा जाता है कि अटक मूख गई और सब पार निकल गये।

दुनिया में जंग के सब सामान जमा है। लाखों आदमी मरने-मारने को तैयार हो रहे हैं। गोलियाँ पानी की बूँदों की तरह मूसला-धार बरस रही हैं। यह देखो, वीर को जोश आया। उसने कहा—“हाल्ट” (ठहरो)। तमाम फौज निःस्तब्ध होकर सकते की हालत में खड़ी हो गई। एल्प्स के पहाड़ों पर फौज ने चढ़ना ज्योंही असम्भव समझा, त्योही वीर ने कहा—“एल्प्स है ही नहीं” फौज को निश्चय हो गया कि एल्प्स है ही नहीं और सब लोग पार हो गये !

एक भेड़ चरानेवाली और सतोगुण में डूबी हुई युवती कन्या के दिल में जोश आते ही कुल फ्रान्स एक भारी शिकस्त से बच गया।

अपने आपको हर घड़ी और हर पल महान् से भी महान् बनाने का नाम वीरता है। वीरता के कारनामे तो एक गाँण बात है। असल वीर तो इन कारनामों को अपनी दिनचर्या में लिखते भी नहीं। दरख्त तो जमीन से रस ग्रहण करने में लगा रहता है। उसे यह ख्याल ही नहीं होता कि मुझमें कितने फल या फूल लगेंगे और कब लगेंगे। उसका काम तो अपने आपको सत्य में रखना है—सत्य को अपने अंदर कूट-कूट कर भरना है और अंदर ही अंदर बढ़ना है। उसे इस चिन्ता से क्या मतलब कि कौन मेरे फल खाया या मैंने कितने फल लोगों को दिये। ]

वीरता का विकास नाना प्रकार से होता है। कभी तो उसका विकास लड़ने-मरने में, खून बहाने में, तलवार-तोप के सामने जान गँवाने में होता है; कभी प्रेम के मैदान में उसका झंडा खड़ा होता है। कभी साहित्य और संगीत में वीरता खिलती है। कभी जीवन के

## सच्ची वीरता

गूढ़ तत्त्व और सत्य की तलाश में बुद्ध जैसे राजा विरक्त न (?) हांकर वीर हो जाते हैं। कभी किसी आदर्श पर और कभी किसी पर वीरता अपना फरहरा लहराती है। परन्तु वीरता एक प्रकार का इलहाम (Inspiration) है। जब कभी इसका विकास हुआ तभी एक नया कमाल नजर आया; एक नया जलाल पैदा हुआ; एक नई रौनक, एक नया रंग, एक नई बहार, एक नई प्रभुता संसार में छा गई। वीरता हमेशा निराली और नई होती है। नयापन भी वीरता का एक खास रंग है। हिन्दुओं के पुराणों का वह आलङ्कारिक खयाल, जिससे पुराणकारों ने ईश्वरावतारों को अजीब अजीब और भिन्न भिन्न लीवास दिये हैं, सच्ची मालूम होती है; क्योंकि वीरता का एक विकास दूसरे विकास से कभी किसी तरह मिल नहीं सकता। वीरता की कभी नकल नहीं हो सकती; जैसे मन की प्रसन्नता कभी कोई उधार नहीं ले सकता। वीरता देश-काल के अनुसार संसार में जब कभी प्रकट हुई तभी एक नया स्वरूप लेकर आई, जिसके दर्शन करते ही सब लोग चकित हो गये—कुछ बन न पड़ा और वीरता के आगे सिर मुका दिया।

जापानी वीरता की मूर्ति पूजते हैं। इस मूर्ति का दर्शन वे चेरी के फूल (Cherry flower) की शांत हँसी में करते हैं। क्या ही सच्ची और कौशलमयी पूजा है! वीरता सदा जांर से भरा हुआ ही उपदेश नहीं करता। वीरता कभी कभी हृदय की कोमलता का भी दर्शन कराती है। ऐसी कोमलता देखकर सारी प्रकृति कोमल हो जाती है; ऐसी सुंदरता देखकर लोग मोहित हो जाते हैं। जब कोमलता और सुंदरता के रूप में वह दर्शन देती है तब चेरी-फूल से भी ज्यादा नाजुक और मनोहर होती है। जिस शख्स ने यूरोप को 'क्रूसेड्ज' (Crusades) के लिये हिला दिया वह उन सबसे बड़ा वीर था जो लड़ाई में लड़े थे। इस पुरुष में वीरता ने आँसुओं और आहों

जारियों का लिबास लिया। देखो, एक छोटा सा मामूली आदमी योरप में जाकर रोता है कि हाथ हमारे तीर्थ हमारे वास्ते खुले नहीं और पालिस्टन के राजा योरप के यात्रियों को दिक करते हैं। इस आँसू-भरी अपील को सुनकर सारा योरप उसके साथ राँ उठा। यह आला दरजे की वीरता है।

नैटिंगेल के साँयों को बीमार लोग सब दवाइयों से उत्तम समझते थे। उसके दर्शनों ही में कितने ही बीमार अच्छे हो जाते थे। वह आला दर्जे का सच्चा परन्द है जो बीमारों के सिरहाने खड़ा होकर दिन-रात गरीबों की निष्काम सेवा करता है और गंदे जख्मों को जरूरत के वक्त अपने मुख से चूसकर साफ करता है। लोगों के दिलों पर ऐसे प्रेम का राज्य अटल है। यह वीरता पर्दानशीन हिन्दुस्तानी औरत की तरह चाहे कभी दुनिया के सामने न आवे, इतिहास के वकों के काले हफों में न आवे, तौ भी संसार ऐसे ही बल से जीता है।

वीर पुरुष का दिल सबका दिल हो जाता है। उसका मन सबका मन हो जाता है। उसके ख्याल सबके ख्याल हो जाते हैं। सबके संकल्प उसके संकल्प हो जाते हैं। उसका बल सबका बल हो जाता है। वह सबका और सब उसके हो जाते हैं।

वीरों के बनाने के कारखाने कायम नहीं हो सकते। वे तो देवदार के दरख्तों की तरह जीवन के अरण्य में खुद-ब-खुद पैदा होते हैं और बिना किसी के पानी दिये, बिना किसी के दूध पिलाये, बिना किसी के हाथ लगाये, तैयार होते हैं। दुनिया के मैदान में अचानक ही सामने आकर वे खड़े हो जाते हैं, उनका सारा जीवन अन्तर ही अन्तर होता है। बाहर तो जवाहिरात की खानों की ऊपरी जमीन की तरह कुछ भी दृष्टि में नहीं आता। वीर की जिन्दगी मुश्किल से कभी कभी बाहर नजर आती है। नहीं उसका स्वभाव छिपे रहने का है।

सच्ची वीरता

"I was a gem concealed,  
Me my burning ray revealed."

[ मैं एक छिपा हुआ रत्न था, मुझे मेरी देदीप्यमान किरणों ने प्रकट किया । ]

( वह लाल गुदड़ियों के भीतर छिपा रहता है । ) कन्दराओं में, गारों में, छांटी छांटी भोपड़ियों में बड़े बड़े वीर महात्मा छिपे रहते हैं । पुस्तकों और अखबारों को पढ़ने से या विद्वानों के व्याख्यानों को सुनने से तो बस ड्राइंग-हॉल ( Drawing Hall Knights ) के वीर पैदा होते हैं । उनकी वीरता अनजान लोगों से अपनी स्तुति सुनने तक खतम हो जाती है । असली वीर तो दुनिया की बनावट और लिखावट के मखौलों के लिये नहीं जीते ।

"It is not in your markets that the heroes carry their blood too."

"I enjoy my own freedom at the cost of my own reputation."

[ वीरों के रक्त का मूल्य आपके बाजारों में नहीं लग सकता ।

अपने सम्मान का बलिदान कर मैं आत्म-स्वातंत्र्य का आनन्द भोगता हूँ । ]

हर दफे दिखाव और नाम की खातिर छाती ठोककर आगे बढ़ना और फिर पीछे हटना परले दरजे की बुजदिली है । वीर तो यह समझता है कि मनुष्य का जीवन एक जरा सी चीज है । वह सिर्फ एक बार के लिये काफी है । मानों इस बंदूक में एक ही गोली है । हाँ, कायर पुरुष इसको बड़ा ही कोमती और कभी न टूटनेवाला हथियार समझते हैं । हर घड़ी आगे बढ़कर और यह दिखाकर कि हम बड़े हैं, वे फिर पीछे इस गरज से हट जाते हैं कि उनका अनमोल जीवन किसी और भी उत्तम काम के लिये बच जाय । बादल गरज

गरजकर ऐसे ही चले जाते हैं, परन्तु बरसनेवाले बादल जरा देर में बारह इंच तक बरस जाते हैं ।

कायर पुरुष कहते हैं—“आगे बढ़े चलो ।” वीर कहते हैं—“पीछे हटे चलो ।” कायर कहते हैं—“उठाओ तलवार ।” “वीर कहते हैं—“सिर आगे करो ।” वीर का जीवन तो प्रकृति ने अपनी शक्तियों को एकत्र संचय (Conserve) करने को बनाया है । सम्भव है कि और पदार्थ उसने अपनी शक्तियों को (Dessipate) फिजूल खा देने के लिए बनाये हों । मगर वीर पुरुष का शरीर कुदरत की कुल ताकतों का समूह ( Conservation ) है । कुदरत का यह मरकज हिल नहीं सकता । सूर्य का चक्कर हिल जाय तो कोई बात नहीं परन्तु वीर के दिल में जो ईश्वरी केन्द्र (Divine Centre) है वह अचल है । कुदरत के और पदार्थों की पालिसी चाहे आगे बढ़ने की हो, अर्थात् अपने बल को नष्ट करने की हो, मगर वीरों की पालिसी बल को हर तरह इकट्ठा करने और बढ़ाने की होती है । वीर तो अपने अन्दर ही ‘मार्च’ करते हैं । क्योंकि हृदयाकाश के केन्द्र में खड़े होकर वे कुल संसार को हिला सकते हैं ।

बेचारी मरियम का लाड़ला, खूबमूरत जवान, अपने मद में मतवाला और अपने आपको शाहंशाह हकीकी कहने वाला ईसा मसीह क्या उस समय कमजोर मालूम होता है जब भारी सलोंब उठाकर कभी गिरता, कभी जख्मी होता और कभी बेहोश हो जाता है ? कोई पत्थर मारता है, कोई ढेला मारता है । कोई थूकता है, मगर उस मर्द का दिल नहीं हिलता । कोई लुद्रहृदय और कायर होता तो अपनी बादशाहत के बल की गुत्थियाँ खोल देता; अपनी ताकत को जायल कर देता; और सम्भव है कि एक निगाह से उस सल्तनत के तख्ते को उलट देता और मुसीबत को टाल देता, परन्तु जिसको हम मुसीबत जानते हैं उसको वह मखौल समझता था । “सुलो मुझे है सेज पिया

## सच्ची वीरता

को, सोने दो मीठी मीठी नींद है आती ।” अमर ईसा को भला दुनिया के विषय-विकार में गर्क लोग क्या जान सकते थे ? अगर चार चिड़ियाँ मिलकर मुझे फाँसी का हुक्म सुना दे और मैं उसे सुनकर रो दूँ या डर जाऊँ तो मेरा गौरव चिड़ियों से भी कम हो जाय । जैसे चिड़ियाँ मुझे फाँसी देकर उड़ गईं वैसे ही बादशाह और बादशाहते आज खाक में मिल गई हैं । सचमुच ही वह छोटा सा बाबा लोगों का सच्चा बादशाह है । चिड़ियों और जानवरों की कचहरियों के फैसलों से जो डरते या मरते हैं वे मनुष्य नहीं हो सकते । रानाजी ने जहर के प्याले से मीराबाई को डराना चाहा । मगर बाहरी सच्चाई ! मीरा ने इस जहर को भी अमृत मानकर पी लिया । वह शेर और हाथी के सामने किये गये, (?) की गई (?) मगर बाहरी प्रेम ! मस्त हाथी और शेर ने देवी के चरणों की धूल को अपने मस्तक पर मला और अपना रास्ता लिया । इस वास्ते वीर पुरुष आगे नहीं, पीछे जाते हैं । अन्दर ध्यान करते हैं । मारते नहीं, मरते हैं ।

वह वीर क्या जो टान के वर्तन की तरह झट गरम और झट ठंडा हो जाता है । सदियों नीचे आग जलती रहे तो भा शायद ही वीर गरम हो और हजारों वर्ष बर्फ उस पर जमती रहे तो भा क्या मजाल जो उसकी वाणी तक ठंडी हो । उसे खुद गरम और सर्द होने से क्या मतलब ? कारलायल को जो आजकल की सभ्यता पर गुस्सा आया तो दुनिया में एक नई शक्ति और एक नई जवान पैदा हुई । कारलायल अंगरेज जरूर है; पर उसकी बोली सबसे निराली है । उसके शब्द मानों आग की चिनगारियाँ हैं जो आदमी के दिलों में आग सी लगा देती हैं । सब कुछ बदल जाय मगर कारलायल की गरमी कभी कम न होगी । यदि हजार वर्ष ससार में दुखड़े और दर्द रोये जायें तो भी बुद्धि की शान्ति और दिल की ठंडक एक दर्जा भी इधर-उधर न होगी । यहाँ आकर फिजिक्स (Physics) के नियम रो देते हैं । हजारों

बर्फ आग जलती रहे तो भी थर्मामीटर जैसा का तैसा ही रहेगा। बाबर के सिपाहिया ने और लोगों के साथ गुरु नानक को भी बेगार में पकड़ लिया। उनके सिर पर बोझ रखा और कहा—“चलो।” आप चल पड़े। दौड़, धूप, बौझ, मुसीबत, बेगार में पकड़ी हुई स्त्रियों का रोना, शरीफ लोगों का दुःख, गाँव के गाँव का जलना सब किस्म की दुख-दाईं बातें हाँ रही हैं। मगर किसी का कुछ असर नहीं हुआ। गुरु नानक ने अपने साथी मर्दाना से कहा—“मर्दाना सारंगी बजाओ, हम गाते हैं। उस भीड़ में सारंगी बज रही है और आप गा रहे हैं। वाह री शान्ति !

अगर कोई छोटा सा बच्चा नेपोलियन के कंधे पर चढ़कर उसके सिर के बाल र्बाचे तो क्या नेपोलियन इसको अपनी बेइज्जती समझकर उस बालक को जमीन पर पटक देगा, ताकि लोग उसको बड़ा वीर कहें ? इसी तरह सच्चे वीर जब उनके बाल दुनिया की चिड़ियाँ नोचती हैं, तब कुछ परवा नहीं करते। क्योंकि उनका जीवन आसपास वालों के जीवन से निहायत ही बढ़ चढ़कर ऊँचा और बलवान् होता है। भला ऐसी बातों पर वीर कब हिलते हैं। जब उनकी मौज आई तभी मैदान उनके हाथ है।

जापान के एक छोटे से गांव की एक झोपड़ी में छोटे कद का एक जापानी रहता था। उसका नाम ओशियो था। यह पुरुष बड़ा अनुभवी और शान्ति था। उसे दीन और दुनिया से कुछ सरोकार न था। बड़े कड़े मिजाज का, स्थिर, धीर और अपने खयालात के समुद्र में डूबा रहनेवाला पुरुष था। आसपास रहनेवाले लोगों के लड़के इस साधु के पास आया-जाया करते थे और वह उनको सुप्त पढ़ाता था। जो कुछ मिल जाता था वही खा लेता था। दुनिया की व्यवहारिक दृष्टि से वह एक किस्म का निखटू था। क्योंकि इस पुरुष ने संसार का कोई बड़ा काम नहीं किया था। उसकी सारी उम्र शान्ति और

## सच्ची वीरता

सतोगुण में गुजर गई थी। लोग समझने थे कि वह एक मामूली आदमी है। एक दफे इस्तिफाक से दो-तीन फमलों के न होने से इस फकीर के आस पास के मुल्क में दुर्भिक्ष पड़ गया। दुर्भिक्ष बढ़ा भयानक था। लोग बड़े दुखी हुए। लाचार होकर इस नंगे, कगाल फकीर के पास मदद माँगने आए। उसके दिल में कुछ खयाल हुआ ! उनकी मदद करने को वह तैयार हो गया ! पहले वह ओसाका नामक शहर के बड़े बड़े धनाढ्य और भद्र पुरुषों के पास गया और उनसे मदद माँगा। इन भलेमानसों ने वादा तो किया, पर उसे पूरा न किया। ओशियो फिर उनके पास कभी न गया। उसने बादशाह के वजीरों को पत्र लिखे कि इन किसानों को मदद देनी चाहिए। परन्तु बहुत दिन गुजर जाने पर भी जवाब न आया। ओशियो ने अपने कपड़े और किताबें नीलाम कर दीं। जो कुछ मिला, मुट्ठी भरकर उन आदमियों की तरफ फेक दिया। भला इससे क्या हो सकता था ? परन्तु ओशियो का दिल इससे पूर्ण शिव रूप हो गया। यहाँ इतना जिक्र कर देना काफी होगा कि जापान के लोग अपने बादशाह को पिता की तरह पूजते हैं। उनके आत्मा की यह एक आदत है। ऐसी कौम के हजारों आदमी इस वीर के पास जमा हैं। ओशियो ने कहा—“सब लोग हाथ में बॉस लेकर तैयार हो जाओ और बगावत का झंडा खड़ा कर दो।” कोई भी चूँ व चरा न कर सका। बगावत का झंडा खड़ा हो गया। ओशियो एक बॉस पकड़कर सबके आगे किओटो जाकर बादशाह के किले पर हमला करने के लिये चला। इस फकीर जनरल की फौज की चाल को कौन रोक सकता था ? जब शाही किले के सरदार ने देखा तब उसने रिपोर्ट की और आज्ञा माँगी कि ओशियो और उसकी बागी फौज पर बंदूकों को बाढ़ छोड़ी जाय ? हुक्म हुआ कि “नहीं, ओशियो तो कुदरत के सज्ज वकों को पढ़नेवाला है। वह किसी खास बात के

लिये चढ़ाई करने आया होगा। उसको हमला करने दो और आने दो।” जब आशियो किले में दाखिल हुआ तब वह सरदार इस मस्त जनरल को पकड़कर बादशाह के पास ले गया। उस वक्त आशियो ने कहा—वे राजभांडार, जो अनाज से भरे हुए हैं, गरीबों को मदद के लिये क्यों नहीं खाल दिये जाते ?

जापान के राजा को डर सा लगा। एक वीर उसके सामने खड़ा था, जिसकी आवाज में दैवी शक्ति थी। हुक्म हुआ कि शाही भांडार खाल दिये जायें और सारा अन्न दरिद्र किसानों को बाँटा जाय। सब सेना और पुलिस धरी की धरी रह गई। मंत्रियों के दफ्तर लगे के लगे रहें। आशियो ने जिस काम पर कमर बाँधी उसको कर दिखाया। लोंगा की विपत्ति कुछ दिनों के लिये दूर हो गई। आशियो के हृदय की साईं, मचाई और दृढ़ता के सामने भला कौन ठहर सकता था ? सत्य की सदा जीव-होती है। यह भी वीरता का एक चिह्न है। रूस के जार ने सब लोगों को फाँसी दे दी। किंतु टाल्सटाय को वह दिल से प्रणाम करता था; उनकी बातों का आदर करता था। जय वही होती है जहाँ हृदय की पवित्रता और प्रेम है। दुनिया किसी कूड़े के ढेर पर नहीं खड़ी कि जिस मुर्ग ने बाँग दी वही सिद्ध हो गया। दुनिया धर्म और अटल आध्यात्मिक नियमों पर खड़ी है। जो अपने आपको उन नियमों के साथ अभेद करके खड़ा हुआ वह विजयी हो गया। आजकल लोग कहते हैं काम करो, काम करो। पर हमें तो ये बातें निरर्थक मालूम होती हैं। पहले काम करने का बल पैदा करो—अपने अन्दर ही अन्दर वृत्त की तरह बढ़ो। आजकल भारतवर्ष में परोपकार करने का बुखार फैल रहा है। जिसको १०५ डिग्री का यह बुखार चढ़ा वह आजकल के भारतवर्ष का ऋषि हो गया। आजकल भारतवर्ष में अखबारों की टकसाल में गढ़े हुए वीर दर्जनों मिलते हैं। जहाँ किसी ने एक-दो काम किए और आगे बढ़कर छाती दिखाई तहाँ

हिन्दुस्तान के सारे अखबारों ने “हीरो” (Hero) की पुकार मचाई। बस एक नया वीर तैयार हो गया। यह तो पागलपन की लहरें हैं। अखबार लिखनेवाले मामूली सिक्के के मनुष्य होते हैं। उनकी स्तुति और निन्दा पर क्यों मरे जाते हो? अपने जीवन को अखबारों के छोटे छोटे पैराग्राफों के ऊपर क्यों लटका रहे हो? क्या यह सच नहीं कि हमारे आज कल के वीरों का जाने अखबारों के लेखों में है? जो इन्होंने रंग बदला तो हमारे वीरों के रंग बदले, ओठ खुश्क हुए और वीरता की आशाये टूट पड़ीं।

प्यारे, अन्दर के केन्द्र को और अपनी चाल उलटो और इस दिखावटी और बनावटी जीवन की चंचलता में अपने आप को न खो दो। वीर नहीं तो वीरों के अनुगामी हो और वीरता के काम नहीं तो धीरे-धीरे अपने अन्दर वीरता के परमाणुओं को जमा करो।

जब हम कभी वीरों का हाल सुनते हैं तब हमारे अन्दर भी वीरता की लहरें उठती हैं और वीरता का रंग चढ़ जाता है। परन्तु वह चिरस्थायी नहीं होता। इसका कारण सिर्फ यही है कि हममें भीतर वीरता का मलवा (Sut) तो होता नहीं। सिर्फ खयाली महल उसके दिखलाने के लिये बनाना चाहते हैं। टीन के बरतन का स्वभाव छोड़कर अपने जीवन के केन्द्र में निवास करो और सच्चाई की चट्टान पर दृढ़ता से खड़े हो जाओ। अपनी जिन्दगी किसी और के हवाले करो ताकि जिन्दगी के बचाने की कोशिशों में कुछ भी समय जाया न हो। इसलिए बाहर की सतह को छोड़कर जीवन की अन्दर की तहों में धुस जाओ; तब नये रंग खुलेंगे। नफरत और द्वैतदृष्टि छोड़ो, राना छूट जायगा। प्रेम और आनन्द से काम लो; शान्ति की वर्षा होने लगेगी और दुखड़े दूर हो जायेंगे। जीवन के तत्व का अनुभव करके चुप हो जाओ; धीर और गम्भीर हो जाओगे। वीरों की, फकीरों की, पीरों की यह कूक है—हटो पीछे, अपने अन्दर जाओ, अपने आपको देखो, दुनिया और की और हो जायगा। अपनी आत्मिक उन्नति करो।

## कन्या-दान—

धन्य हैं वे नयन जो कभी कभी प्रेम नीर से भर आते हैं। प्रति दिन गंगा-जल से तो स्नान होता ही है परन्तु जिस पुरुष ने नयनों की प्रेम-धारा में कभी स्नान किया है वही जन्मता नयनों की गंगा है कि इस स्नान से मन के मलिनभात्र किम तरह बह जाते हैं; अंतःकरण कैसे पुष्प की तरह खिल जाता है; हृदय-ग्रन्थि किस तरह खुल जाती है कुटिलता और नीचता का पर्वत कैसे चूर-चूर हो जाता है। मावन-भादों की वर्षा के बाद वृक्ष जैसे नवीन नवीन कोपले धारण किये हुए एक विचित्र मनोमोहिनी छटा दिखाते हैं उसी तरह इस प्रेमस्नान से मनुष्य की आन्तरिक अवस्था स्वच्छ, कोमल और रसभीनी हो जाती है। प्रेम-धारा के जल से सींचा हुआ हृदय प्रफुल्लित हो उठता है। हृदयस्थली के पवित्र भावों के पौधे उगते, बढ़ते और फलते हैं। वर्षा और नदी के जल से तो अन्न पैदा होता है; परन्तु नयनों की गंगा से प्रेम और वैराग्य के द्वारा मनुष्य जीवन को आग और बर्फ से अपतिस्मा मिलता है अर्थात् नया जन्म होता है—मानो प्रकृति ने हर एक मनुष्य के लिए इस नयन-नीर के रूप में मसीहा भेजा है, जिससे हर एक नर-नारी कृतार्थ हो सकते हैं। यही वह यज्ञोपवीत है जिसके धारण करने से हर आदमी द्विज हो सकता है। क्या ही उत्तम किसी ने कहा है :—

हाथ खाली मनु मे दीदा बुतों से क्या मिले ।

मोतियों की पंज-ए-मिजगाँ में इक माला तो हो ॥

‘आज हम उस अश्रु-धारा का स्मरण नहीं करते जो ब्रह्मानन्द के कारण योगी जनों के नयनों से बहती है। आज तो लेखक के लिये अपने जैसे साधारण पुरुषों की अश्रुधारा का स्मरण करना ही इस लेख का मंगलाचरण है। प्रेम की बूँदों में यह असार संसार मिथ्या रूप होकर घुल जाता है और हम पृथ्वी से उठकर आत्मा के पवित्र नभो-मंडल में उड़ने लगते हैं। अनुभव करते हुए भी ऐसी घुली हुई अवस्था में हर कोई समाधिस्थ हो जाता है; अपने आपको भूल जाता है; शरीराध्यास न जाने कहाँ चला जाता है; प्रेम की काली घटा ब्रह्म-रूप में लोन हो जाती है। चाहे जिस शिल्पकार, चाहे जिस कला-कुशल-जन, के जीवन को देखिए उसे इस परमावस्था का स्वयं अनुभव हुए बिना अपनी कला का तत्त्व ज्ञान नहीं होता। चित्रकार सुंदरता को अनुभव करता है और तत्काल ही मारे खुशी के नयनों में जल भर लाता है। बुद्धि, प्राण, मन और तन सुंदरता में डूब जाते हैं। सारा शरीर प्रेम-वर्षा के प्रवाह में बहने लगता है। वह चित्र ही क्या जिसको देख देखकर चित्रकार की आँखें इस मदहोश करनेवाली ओस से तर न हुई हों। वह चित्रकारी ही क्या जिसने हजार बार चित्रकार को इस योग-निद्रा में न सुलाया हो।’

कवि को देखिए, अपनी कविता के रस-पान से मत्त होकर वह अन्तःकरण के भी परे आध्यात्मिक नभो-मंडल के बादलों में विचरण करता है। ये बादल चाहे आत्मिक जीवन के केन्द्र हों, चाहे निर्विकल्प समाधि के मंदिर के बाहर के घेरे, इनमें जाकर कवि जरूर सोता है। उसका अस्थि-मांस का शरीर इन बादलों में घुल जाता है। कवि वहाँ ब्रह्म-रस को पान करता है और अचानक बैठे बिठाये श्रावण-भादों के मेघ की तरह संसार पर कविता की वर्षा करता है। हमारी आँखें कुछ ऐसी ही हैं। जिस प्रकार वे इस संसार के कर्त्ता को नहीं देख सकती उसी प्रकार आध्यात्मिक देश के बादल और धुन्ध में सोये

हुए कलाधर पुरुष को नहीं देख सकतीं। उसकी कविता जो हमको मदमत्त करती है वह एक स्थूल चीज है और यही कारण है कि जो कलानिपुण जन प्रतिदिन अधिक से अधिक उस आध्यात्मिक अवस्था का अनुभव करता है वह अपनी एक बार अलापी हुई कविता को उस धुन से नहीं गाता जिससे वह अपने ताजे से ताजे दोहों और चौपाइया का गान करता है। उसकी कविता के शब्द केवल इस वर्ण के दाने हैं। यह तो ऐसे कवि के शान्तरस की बात हुई। इस तरह के कवि का वीररस इसी शान्तरस के बादलों की टक्कर से पैदा हुई बिजली की गरज और चमक है। कवि को कविता में देखना तो साधारण काम है; परन्तु आँखवाले उसे कहीं और ही देखते हैं। कवि की कविता और उसका आलाप उसके दिल और गले से नहीं निकलते। वे तो संसार के ब्रह्म-केन्द्र से आलापित होते हैं। केवल उस आलाप करनेवाली अवस्था का नाम कवि है। फिर चाहे वह अवस्था हरे हरे बांस की पोरी से, चाहे नारद की वाणा से, और चाहे सरस्वती के सितार से बह निकले। वही सच्चा कवि है जो दिव्य सौंदर्य के अनुभव में लीन हो जाय और लीन होने पर जिसकी जिह्वा और कण्ठ मारे खुशी के रुक जायँ, रोमांच हो उठे, निजानन्द में मत्त होकर कभी रोने लगें और कभी हँसने।

हर एक कला-निपुण पुरुष के चरणों में यह नयनों की गंगा सदा बहती है। क्या यह आनन्द हमको विधाता ने नहीं दिया ! क्या उसी नीर में हमारे लिये राम ने अमृत नहीं भरा ! अपना निश्चय तो यह है कि हर एक मनुष्य जन्म से ही किसी न किसी अद्भुत प्रेम-कला से युक्त होता है। किसी विशेष कला में निपुण न होते हुए भी राम ने हर एक हृदय में प्रेम-कला की कुँडों रख दी हैं। इस कुँडों के लगते ही प्रेम-कला की सम्पूर्ण सम्भूति अज्ञानियों और निरक्षरों को भी प्राप्त हो सकती है।

## कन्या-दान

┌ All arts are nothing but Samadhi applied to love.

We are all born geniuses only if we will. The painter the sculptor, the poet and the prophet have only been selected to love objects unseen by the ordinary human eye

[ कला स्वयं कुछ नहीं है प्रेम में मन को समाहित करना ही कला है । हम सब प्रतिभा लेकर जन्म लेते हैं, हाँ यदि हम उसका उपयोग करें । सामान्य आँखों से न दिखाने वाली वस्तु को प्यार कर सकने के कारण ही चित्रकार, मूर्तिकार, कवि और मसीहा विशिष्ट स्थान रखते हैं । ]

कवि सदा बादलों से घिरा हुआ और तिमिराच्छन्न देश में रहता है । वही से चले हुए बादलों के टुकड़े माता, पिता, भ्राता, भगिनी, सुत, दारा इत्यादि के चक्षुओं पर आकर छा जाते हैं । मैंने अपनी आँखों इनको छुम छुम बरसते देखा है । जिस आध्यात्मिक देश में कवि, चित्रकार, योगी, पोर, पैगम्बर, औलिया विचरते हैं और किसी और को घुमने नहीं देते, वह सारे का सारा देश इन आम लोगों के प्रेमाश्रुओं से घुल घुल कर बह रहा है । आओ, मित्रों ! स्वर्ग का आम नीलाम हो रहा है ।

Paradise is at auction and any body can buy it.

[स्वर्ग नीलाम हो रहा है । कोई भी व्यक्ति इसे खरीद सकता है ।]

सर वाल्टर स्काट (Sir Walter Scott) अपनी "लेडी आव दि लेक" (Lady of the Lake) नामक कविता में बड़ी खूबी से उन अश्रुओं की प्रशंसा करते हैं जो अश्रु पिता अपनी पुत्री को आलिङ्गन करके उसके केशों पर मोती की लड़ी की तरह बखेरता है । इन

अश्रुओं को वे अद्भुत दिव्य प्रेम के अश्रु मानते हैं। सच है, संसार के गृहस्थ मात्र के सम्बन्धों में पिता और पुत्री का संबंध दिव्यप्रेम से भरा है। पिता का हृदय अपनी पुत्री के लिए कुछ ईश्वरीय हृदय से कम नहीं।

पाठक, अब तक न तो आपको और न मुझे ही ऊपर की लिखी हुई बातों का ऊपरी दृष्टि से कन्यादान के विषय से कुछ संबंध मालूम होता है। तो फिर लेखक ने सरस्वती के सम्पादक को नीली पेंसल फेरने का अधिकार क्यों न दिया। उसका कारण केवल यह है कि ऊपर और नीचे का लेख लेखक की एक विशेष देश-काल-सम्बन्धी मनोलहरी है। पता लगे, चाहे न लगे कन्यादान से सम्बन्ध अवश्यमेव है।

एक समय आता है जब पुत्री को अपने माता-पिता का घर छोड़कर अपने पति के घर जाना पड़ता है।

अम्बकं यजामहे सुगन्धिं पतिवेदनम्।

उर्वास्वमिव बन्धनादितो मुक्षीयमासुतेः। शु० यजु०

“आओ, आज हम सब मिलकर अपने पतिवेदन उस त्रिकाल-दर्शी सुगन्धित पुरुष का यज्ञ करे जिससे, जैसे दाना पकने पर अपने छिलके से अलग हो जाता है, वैसे ही हम इस घर के बंधनों से छूटकर अपने पति के अटलराज को प्राप्त हों।”

प्राचीन वैदिक काल में युवती कुवारी लड़कियाँ यज्ञाग्नि की परिक्रमा करती हुई ऊपर की प्रार्थना ईश्वर के सिंहासन तक पहुँचाया करती थीं।

हर एक देश में यह बिछोड़ा भिन्न भिन्न प्रकार से होता है। परन्तु इस बिछोड़े में त्याग-अंश नजर आता है। योरोप में आदि काल से ऐसा रवाज चला आया है कि एक युवा कन्या किसी वीर, शुद्ध हृदय

## कन्या-दान

और सोहने नौजवान को अपना दिल चुपके चुपके पेड़ों की आड़ में या नदी के तट पर, या वन के किसी सुनसान स्थान में, दे देती है। अपने दिल को हार देती है माना अपने हृत्कमल को अपने प्यारे पर चढ़ा देती है; अपने आपको त्याग कर वह अपने प्यारे में लीन हो जाती है। वाह ! प्यारी कन्या तूने तो जीवन के खेल को हारकर जीत लिया। तेरी इस हार की मदा संसार में जीत ही रहेगी। उस नौजवान को तू प्रेम-मय कर देती है। एक अद्भुत प्रेम-योग से उसे अपना कर लेती है। उसके प्राण की रानी हो जाती है। देखो ! वह नौजवान दिन-रात इस धुन में है कि किस तरह वह अपने आपको उत्तम से उत्तम और महान् से महान् बनाये—वह उस बेचारी निष्पाप कन्या के शुद्ध और पवित्र हृदय को ग्रहण करने का अधिकारी हो जाय। प्रकृति ऐसा दान बिना पवित्रात्मा के किसी को नहीं दे सकती। नौजवान के दिल में कई प्रकार की उमङ्गें उठती हैं। उसकी नाड़ी नाड़ी में नया रक्त, नया जोश और नया जोर आता है। लड़ाई में अपनी प्रियतमा का खयाल ही उसको वीर बना देता है।

उसी के ध्यान में यह पवित्र दिल निडर हो जाता है। मौत को जीतकर उसे अपनी प्रियतमा को पाना है।

**The Paradise is under the Shade of Swords.**

**[ तलवार की छाया में स्वर्ग बसता है । ]**

ऊँचे से ऊँचे आदर्श को अपने सामने रखकर यह राम का लाल तन-मन से दिन-रात उसके पाने का यत्न करता है। और जब उसे पा लेता है तब हाथ में विजय का फुरेरा लहराते हुए एक दिन अकस्मात् उस कन्या के सामने आकर खड़ा हो जाता है। कन्या के नयनों से गङ्गा वह निकलती है और उस लाल का दिल अपनी प्रियतमा की सूक्ष्म प्राणगति से लहराता है, कॉपता है, और शरीर ज्ञानहीन हो जाता है। बेबस होकर वह उसके चरणों में अपने आपको

गिरा देता है। कन्या तो अपने दिल को दे ही चुकी थी; अब इस नौजवान ने आकर अपना दिल अर्पण किया। इस पवित्र प्रेम ने दोनों के जीवन को रेशमी डोरों से बाँध दिया—तन-मन का होश अब कहाँ है। मैं तू और तू मैं वाली मदहोशी हो गई। यह जोड़ा मानों ब्रह्म में लीन हो गया; इस प्रेम में कदूरत लेश मात्र नहीं होती। विक्टर (Victor Hugo) ह्यूगो ने ले-मिज़ाबल (Les Misérables) में मेरीयस (Marius) और कौसेट (Cosett) के ऐसे मिलाप का बड़ा ही अच्छा वर्णन किया है। चाँदनी रात है। मंद मंद पवन चल रही है। वृक्ष अर्जाब लीला में आसपास खड़े हैं। और यह कन्या और नौजवान कई दिन बाद मिले हैं। मेरीयस के लिए तो कुल संसार इस देवी का मंदिर-रूप हो रहा था। अपने हृदय की ज्योति को प्रज्वलित करके उस देवी की वह आरती करने आया है। कौसेट घास पर बैठी है। कुछ मीठी मीठी प्रेम भरी बातचीत हो रही है। इतने में सरसराती हवा ने कौसेट के सोने से चीर उठा दिया। जरा सी देर के लिये उस बर्फ की तरह सफेद और पवित्र छाती को नग्न कर दिया। मगर मेरीयस ने फौरन अपना मुँह परे को हटा लिया। वह तो देवी-पूजा के लिये आया है; आँख ऊपर करके नहीं देख सकता।

रोमियो और जूलियट नामक शेक्सपियर के प्रसिद्ध नाटक में जूलियट ने किस अंदाज से अपना दिल त्याग दिया और रोमियों के दिल की रानी हो गई!

वे किस्से-कहानियाँ जिनमें नौजवान शाहजादे अपना दिल पहले दे देने हैं, अपवित्र मालूम होते हैं; (?) और उनके लेखक प्रेम के स्वर्गीय नियम से अनभिज्ञ प्रतीत होते हैं। कुछ शक नहीं, कहीं कहीं पर वे इस नियम को दरसा देते हैं, परन्तु सामान्य लेखों में पुरुष का दिल ही तड़पता दिखलाते हैं। कन्या अपना दिल चुपके से दे देती है। इस दिल के दे देने की खबर वायु, पुष्प, वृक्ष, तारागण इत्यादि को

## कन्या-दान

होती है। लैली का दिल मजनूँ की जात में पहले घुल जाना चाहिए और इस अभेदता का परिणाम यह होना चाहिए कि मजनूँ उत्पन्न हो—इस यज्ञ-कुरण्ड से एक महात्मा (मजनूँ) प्रकट होना चाहिए। सोहनी मेंहीवाल\* के किस्से में असली मेंहीवाल उस समय निकलता है जब कि सोहनी अपने दिल को लाकर हाजिर करती है। राँम्भा† हीर की तलाश में निकलना जरूर है; मगर सच्चा योगी वह तभी होता है जब उसके लिए हीर अपने दिल को बेले के किसी झाड़ में छोड़ आती है। शकुन्तला जंगल की लता की तरह बेहोशी की अवस्था में ही जवान हो गई। दुष्यंत को देखकर अपने आपको खो बैठी। राजहंसों से पता पाकर दमयन्ती नल में लीन हो गई। राम के धनुष तोड़ने से पहले ही सीता अपने दिल को हार चुकी। सीता के दिल के बलिदान का ही यह असर था कि मर्यादा पुरुषोत्तम राम भगवान् वन वन में बारह वर्ष तक अपनी प्रियतमा के क्लेश निवारणार्थ रोते फिरे।

Nothing but a perfect womanhood can call man to Purity and sacrifice, to manhood and to godhood.

[केवल पूर्ण नारी ही मनुष्य को पवित्रता और त्याग का पाठ पढ़ा सकती है। वही उसे मनुष्यत्व और देवत्व का सन्देश दे सकती है।]

---

\* पंजाब के प्रसिद्ध कवि फाजलशाह की रचित कविता में सोहनी मेंहीवाल के प्रेम का वर्णन है। सोहनी एक कलाल की कन्या थी और मेहीवाल फारस के एक बड़े सौदागर का पुत्र था जिसने सोहनी के प्रेम में अपना हर्षस्व लुटाकर अपनी प्रियतमा के पिता के यहाँ भैंस चराने पर नौकर हो गया।

† यह भी पंजाब ही के प्रसिद्ध कवि वारेशाह की कविता की कथा है।

यूरोप में कन्या जब अपना दिल ऊपर लिखे गए नियम से दान करती है तब वहाँ का गृहस्थ-जीवन आनन्द और सुख से भर जाता है। जहाँ खुशामद और झूठे प्रेम से कन्या फिसली, थोड़ी ही देर के बाद गृहस्थाश्रम में दुख-दर्द और राग-द्वेष प्रकट हुए। प्रेम के कानून को तोड़कर जब यूरोप में उलटी गंगा बहने लगी तब वहाँ विवाह एक प्रकार की ठेकेदारी हो गया और समाज में कहीं कहीं यह खयाल पैदा हुआ कि विवाह करने से कुंवारा रहना ही अच्छा है। लोग कहते हैं कि यूरोप में कन्या-दान नहीं होता, परन्तु विचार से देखा जाय तो संसार में कभी कहीं भी गृहस्थ का जीवन कन्या-दान के बिना सुफल नहीं हो सकता। यूरोप के गृहस्थों के दुख-दुःख तब तक कभी न जायेंगे जब तक एक बार फिर प्रेम का कानून, जिसको शेक्सपियर ने अपने “रोमियो और जूलियट” में इस खूबी से दर्साया है, लोगों के अमल में न आवेगा। अतएव यूरोप और अन्य पश्चिमी देशों में कन्या-दान अवश्यमेव होता है। वहाँ कन्या पहले अपने आपको दान कर देती है; पीछे से गिरजे में जाकर माता, पिता या और कोई सम्बन्धी फूलों से सजी हुई दुल्हन को दान करता है।

( The bride is given away in Europe. )

[ यूरोप में वधू दे दी जाती है ]

आजकल पश्चिमी देशों में झूठी और जादिली शारीरिक आजादी के खयाल ने कन्या-दान की आध्यात्मिक बुनियाद यूरोप में गृहस्थों को तोड़ दिया है। कन्या-दान की रीति जरूर की बेचैनी प्रचलित है, परन्तु वास्तव में उस रीति में मानो प्राण ही नहीं। कोई अखबार खोलकर देखो, उन देशों में पति और पत्नी के झगड़े वकीलों द्वारा जजों के सामने होते हैं। और जज की मेज पर विवाह की सोने की अँगूठियाँ, कॉच

## कन्या-दान

के छल्लों की तरह द्वेप के पत्थरों से टूटती हैं। गिरजे में कल के बने हुए जोड़े आज टूटे और आज के बने जोड़े कल टूटे।

ऐसा मालूम होता है कि मौनोगेमी ( स्त्री-व्रत ) का नियम, जो उन लोगों की स्मृतियों और राज-नियमों में पाया जाता है, उस समय बनाया गया था जब कन्या-दान आध्यात्मिक तरीके से वहाँ होता था और गृहस्था का जीवन सुखमय था।

भला सच्चे कन्यादान के यज्ञ के बाद कौन सा मनुष्य-हृदय इतना नीच और पापी हो सकता है जो हवन हुई कन्या के सिवा किसी अन्य स्त्री को बुरी दृष्टि से देखे। उस कुरवान हुई कन्या की खातिर कुल जगत् की स्त्री-जाति से उस पुरुष का पवित्र सम्बन्ध हो जाता है। स्त्री-जाति की रक्षा करना और उसे आदर देना उसके धर्म का अङ्ग हो जाता है। स्त्री-जाति में से एक स्त्री ने इस पुरुष के प्रेम में अपने हृदय की इसलिये आहुति दी है कि उसके हृदय में स्त्री-जाति की पूजा करने के पवित्र भाव उत्पन्न हों, ताकि उसके लिये कुलीन स्त्रियाँ माता समान, भगिनी समान, पुत्री समान, देवी समान हो जायँ। एक ही ने ऐसा अद्भुत काम किया कि कुल जगत् की बहनों को इस पुरुष के दिल की डोर दे दी। इसी कारण उन देशों में मौनोगेमी ( स्त्री-व्रत ) का नियम चला। परन्तु आजकल उस कानून की पूरे तौर पर पाबन्दी नहीं होती। देखिए, स्वार्थ-परायणता के वश होकर थोड़े से तुच्छ भोगों की खातिर सदा के लिए कुंवारापन धारण करना क्या इस कानून को तोड़ना नहीं है। लोगों के दिल जरूर विगड़ रहे हैं। ज्यों ज्यों सौभाग्यमय गृहस्थ-जीवन का सुख घटता जाता है त्यों त्यों मुल्की और इखलाको बेचैनी बढ़ती जाती है। ऐसा मालूम होता है कि यूरोप की कन्याएँ भी दिल देने के भाव को बहुत कुछ भूल गई हैं। इसी से अलबेली भोली कुमारिकायें पारल्ल्यामेंट के ऋगड़ों में पड़ना चाहती हैं; तलवार और बंदूक लटकाकर लड़ने मरने को तैयार

हैं। इससे अधिक यूरोप के गृहस्थ-जीवन की अशान्ति का और क्या सञ्चत हो सकता है।

On one side the suppragist movement is to my mind the open condemnation of the moral degeneration of men who have forgotten that they have to take the inspiration of their life and its activities from the hearts of the mother, the sister, the wife and the daughter, and have to borrow all their nobleness from the divine womanhood and on the other side, it is the painful evidence of the extinction of the realisation of the ideal of Kanyadan — thence — blest of all arts by which she could rule over the hearts of men and she, the queen of the Home, was in fact the Queen of the Empires of man, real dictator of laws and the Presiding Deity of nations.

[ स्त्रियों को मताधिकार दिलाने का यह आन्दोलन मेरे विचार से एक ओर उन मनुष्यों के नैतिक पतन की खुली भर्त्सना है जो यह भूल गये हैं कि उन्हें अपने जीवन तथा कार्यों में अपनी माँ, बहिन, पत्नी तथा बेटी से प्रेरणा ग्रहण करनी होगी और नैसर्गिक नारीत्व से ही अपनी सारी उच्चता प्राप्त करनी होगी, दूसरी ओर यह कन्या दान के उस आदर्श के लोप की अनुभूति का दुःखद उदाहरण है, जो समस्त कलाओं में उच्चतम है—वह कला जिसके सहारे नारी मनुष्यों के हृदयों पर राज्य करती है और वह सत्यमेव धर की रानी, मानव साम्राज्य की साम्राज्ञी, सच्ची नियामिका और राष्ट्रों की सच्ची भाग्य विधायिका बन सकती है। ]

## कन्या-दान

आर्यावर्त में कन्यादान प्राचीन काल से चला आता है। कन्यादान और पतिव्रत-धर्म दोनों एक ही फल-प्राप्ति का प्रतिपादन करते हैं। आज-कल के कुछ मनुष्य कन्यादान को गुलामी की हँसली सच्ची स्वतंत्रता मान बैठे हैं। वे कहते हैं कि क्या कन्या कोई गाय, भैंस या घोड़ी की तरह बेजान और बेजबान वस्तु है जो उसका दान किया जाता है। यह अल्पज्ञता का फल है—सीधे और सच्चे रास्ते से गुमराह होना है। ये लोग गम्भीर विचार नहीं करते। जीवन के आत्मिक नियमों की महिमा नहीं जानते। क्या प्रेम का नियम सबसे उत्तम और बलवान नहीं है? क्या प्रेम में अपनी जान को हार देना सब के दिलों को जीत लेना नहीं है? क्या स्वतन्त्रता का अर्थ मन की बेलगाम दौड़ है, अथवा प्रेमाग्नि में उसका स्वाहा होना है? चाहे कुछ कहिए, सच्ची आजादी उसके भाग्य में नहीं, जो अपनी रक्षा खुरामद और मेवा से करता है। अपने आपको गँवाकर ही सच्ची स्वतन्त्रता नमोब होती है। गुरु नानक अपनी सीड़ी जवान में लिखते हैं :—“जा पुच्छो सुहामनी कीनी गल्लीं शौह पाइए। आप गँवाइए ताँ शौह पाइए और कैसी चतुराई”—अर्थात् यदि किसी सौभाग्यवती से पूछोगे कि किन तरीकों से अपना स्वतन्त्रता-रूपी पति प्राप्त होता है तो उससे पता लगेगा कि अपने आपको प्रेमाग्नि में स्वाहा करने से मिलता है और कोई चतुराई नहीं चलती।

True freedom is the highest summit of altruism and altruism is the total extinction of self in the self of all.

[मेरे लिए स्वतन्त्रता परोपकार की भावना का चरम लक्ष्य है और परोपकार की भावना है समष्टिगत 'स्व' में व्यक्तिगत 'स्व' का लय होना।]

ऐसी स्वतंत्रता प्राप्त करना हर एक आर्य कन्या का आदर्श है। सच्चे आर्य-पिता की पुत्री गुलामी, कमजोरी और कमीनेपन के लालचों से सदा मुक्त है। वह देवी तो यहाँ संसार-रूपी सिंह पर सवारी करती है। वह अपने प्रेम सागर की लहरों में सदा लहराती है। कभी सूर्य की तरह तेजस्विनी और कभी चंद्रमा की तरह शान्तिप्रदायिनी होकर वह अपने पति की प्यारी है। वह उसके दिल की महारानी है। पति के तन, मन, धन और प्राण की मालिक है। सच्चे आर्य-गृहों में इस कन्या का राज्य है। हे राम ! यह राज सदा अटल रहे !

इसमें कुछ सन्देह नहीं कि कन्यादान आत्मिक भाव से तो वही अर्थ रखता है जिस अर्थ में सावित्री, सीता, दमयन्ती और शकुन्तला ने अपने आपको दान किया था; और इन नमूनों में कन्यादान का आदर्श पूर्ण रीति से प्रत्यक्ष है। प्रश्न यह है कि यह आदर्श सब लोगों के लिए किस तरह कल्याणकारी हो ?

लेखक का खयाल है कि आर्य-ऋषियों की बनाई हुई विवाह-पद्धति इस प्रश्न का एक सुन्दर उत्तर है। एक तरीका तो आन्तरिक अनुभव से इस आदर्श को प्राप्त करना है। वह तो, जैसा ऊपर लिख आये हैं, किसी किसी के भाग्य में होता है। परन्तु पवित्रात्माओं के आदेश से हर एक मनुष्य के हृदय पर आध्यात्मिक असर होता है। यह असर हमारे ऋषियों ने बड़े ही उत्तम प्रकार से हर एक नर-नारी के हृदय पर उत्पन्न किया है। प्रेमभाव उत्पन्न करने ही के लिये उन्होंने यह विवाह-पद्धति निकाली है। इससे प्रिया और प्रियतम का चित्त स्वतः ही परस्पर के प्रेम में स्वाहा हो जाता है। विवाह काल में यथोचित रीतियों से न सिर्फ हवन की अग्नि ही जलाई जाती है किन्तु प्रेम की अग्नि की ज्वाला भी प्रज्वलित की जाती है जिसमें पहले आहुति हृदय-कमल के अर्पण के रूप में दी जाती है। सच्चा कुलपुरोहित तो वह है जो कन्या-दान के मंत्र पढ़ने से पहले ही यह अनुभव क

लेता है कि आध्यात्मिक तौर से पति और पत्नी ने अपने आपको परस्पर दान कर दिया ।

भारतवर्ष में वैवाहिक आदर्श को इन जाति-पाँति के बखेड़ों ने अब तक कुछ टूटी फूटी दशा में बचा रखा है । कभी कभी इन बूढ़े, हठी और छू छू करने वाले लोगों को लेखक दिल से आर्य-आदर्श के आशीर्वाद दिया करता है कि इतने कष्ट भेलकर भगनावशिष्ट भी इन लोगों ने कुछ न कुछ तो पुराने आदर्शों के अंश नमूने बचा रखे हैं । पत्थरों की तरह ही सही, खंडहरों के टुकड़ों की तरह ही सही, पर ये अमूल्य चिह्न इन

लोगों ने रुई में बाँध बाँधकर, अपनी कुबड़ी कमर पर उठा, कुलियों की तरह इतना फासला तै करके यहाँ तक पहुँचा तो दिया । जहाँ इनके काम मूढ़ता से भरे हुए ज्ञात होते हैं, वहाँ इनकी सुखता की अमोलता भी साथ ही साथ भाषित हो जाती है । जहाँ ये कुछ कुटिलतापूर्ण दिखाई देने हैं वहाँ इनकी कुटिलता का प्राकृतिक गुण भी नजर आ जाता है । कई एक चीजे, जाँ भारतवर्ष के रस्मोवाज के खँडहरों में पड़ी हुई हैं, अत्यन्त गम्भीर विचार के साथ देखने योग्य हैं । इस अजायबघर मे से नये नये जीते जागते आदर्श सही सलामत निकल सकते हैं । मुझे ये खँडरात खूब भाते हैं । जब कभी अवकाश मिलता है मैं वही जाकर सोता हूँ । इन पत्थरों पर खुदी हुई मूर्तियों के दर्शन की अभिलाषा मुझे वहाँ ले जाती है । मुझे उन परम पराक्रमी प्राचीन ऋषियों की आवाजे इन खँडरात में से सुनाई देती हैं । ये सँदेसा पहुँचाने वाले दूर से आये हैं । प्रसुदित होकर कभी मैं इन पत्थरों को इधर टटोलता हूँ, कभी उधर रोलता हूँ । कभी हनुमान की तरह इनको फोड़ फोड़ कर इनमें अपने राम ही को देखता हूँ । मुझे उन आवाजों के कारण सब कोई मोठे लगते हैं । मेरे तो यही शालिग्राम हैं । मैं इनको स्नान कराता हूँ, इन पर फूल चढ़ाता हूँ और घण्टी

बजाकर भोग लगाता हूँ। इनसे आशीर्वाद लेकर अपना हल चलाने जाता हूँ। इन पत्थरों में कई एक गुप्त मंद भी हैं। कभी कभी इनके प्राण हिलने प्रतीत होते हैं और कभी सुनसान समय में अपनी भाषा में ये बोल भी उठते हैं।

भाई की प्यारी, माता की राजदुलारी, पिता की गुणवती पुत्री, सखियों की अलबेली सखी के विवाह का समय समीप आया। विवाह के सुहाग के लिए बाजे बज रहे हैं। सगुन मनाए जा रहे

**भारत में** हैं ! शहर और पास-पड़ोस की कन्यायें मिलकर सुरीले कन्या-दान की और मीठे सुरों में रात के शब्दहीन समय को रमणीय रीति बना रही हैं ! सबके चेहरे फूल की तरह खिल रहे हैं !

परन्तु ज्यों ज्यों विवाह के दिन नजदीक आते जाते हैं त्यों त्यों विवाह होने वाली कन्या अपनी जान को हार रही है, स्वप्नों में डूब रही है। उसके मन की अवस्था अद्भुत है। न तो वह दुखी ही है और न रजोगुणी खुशी से ही भरी है। इस कन्या की अजीब अवस्था इस समय उसे अपने शरीर से उठाकर ले गई है और मालूम नहीं कहाँ छोड़ आई है। इतना जरूर निश्चित है कि उसके जीवन का केन्द्र बदल गया है। मन और बुद्धि से परे वह किसी देव-लोक में रहती है। विवाह-लग्न आ गई ? स्त्रियाँ पास खड़ी गा रही हैं। अजीब सुहाना समय है। यथासमय पुरोहित कन्या के हाथ में कङ्कण बाँध देता है। इस वक्त कन्या का दर्शन करके दिल ऐसी चुटकियाँ भरता है कि हर मनुष्य प्रेम के अश्रुओं से अपनी आँखें भर लेता है जान पड़ता है कि यह कन्या उस समय निःसंकल्प अवस्था को प्राप्त होकर अपने शरीर को अपने पिता और भाइयों के हाथ में आध्यात्मिक तौर से सौंप देती है। उसकी पवित्रता और उसके शरीर की वेदनावद्ध क अनाथावस्था माता-पिता और भाई-बहन को चुपके चुपके प्रेमाश्रुओं से स्नान कराती है। कन्या न तो रोती है और न हँसती है, और न

## कन्या-दान

उसे अपने शरीर की सुध ही है। इस कन्या को यह अनाथावस्था उस श्रेणी की है जिस श्रेणी को प्राप्त हुए छोटे छोटे बालक नेपोलियन ऐसे दिग्विजयी नरनाथों के कंधों पर सवार होते हैं या ब्रह्म-लीन महात्मा बालकरूप होकर दिल की बर्त्ता में राज करते हैं। धन्य हैं, ऐ तू आर्य-कन्ये ! जिनने अपने क्षुद्र-जीवन को बिल्कुल ही कुछ न समझा। शरीर को तूने ब्रह्मार्पण अथवा अपने पिता या भाई के अर्पण कर दिया। इसका शरीर-त्याग लेखक को ऐसा ही प्रतीत होता है जैसे कोई महात्मा वेदान्त का सतमा भूमिका में जाकर अपना देहाध्यास त्याग देता है। मैं सच कहता हूँ कि इस कन्या की अवस्था संकल्प हीन होती है। चलती-फिरती भी वह कम है। उसके शरीर की गति ऐसी मालूम होती है कि वह अब गिरी, अब गिरी। हाँ, इसे मैं भालनेवाले कोई और होते हैं। दो एक चन्द्रमुखी सहेलियाँ इसके शरीर को रखवाजी करती हैं। सारे सम्बन्धी इसकी रक्षा में तत्पर रहते हैं। पतिवरा आर्य-कन्या और पतिवरा यूरप की कन्या में आजकल भी बहुत बड़ा फर्क है। विचारशील पुरुष कह सकते हैं कि आर्यकन्या के दिल में विवाह के शारीरिक सुखों का उन दिनों लेशमात्र भी ध्यान नहीं आता है। सुशोला आर्यकन्या दिव्य नभो-मंडल में घूमती है। विवाह से एक दो दिन पहले हाथों और पाँवों में मेहँदी लगाने का समय आता है। ( पंजाब में मेहँदी लगाने है; कहीं कहीं महावर लगाने का रिवाज है। ) कन्या के कमरे में दो एक छोटे छोटे बिनौले के दीपक जल रहे हैं। एक जल का घड़ा रक्खा है। कुशासन पर अपनी सहेलियाँ सहित कन्या बैठी है। सम्बन्धी जन चमचमाते हुए थालों में मेहँदी लिए आ रहे हैं। कुछ देर में प्यारे भाई को बारी आई कि वह अपनी भगिनी के हाथों में मेहँदी लगाये। जिस तरह समाधिस्थ योगी के हाथों पर कोई चाहे जो कुछ करे उसे खबर नहीं होती, उसी तरह इस भोली भाली कन्या के दो छोटे छोटे हाथ इसके भाई के हाथ पर

हैं; पर उसे कुछ खबर नहीं। वह नीर भरा वीर अपनी बहन के हाथों में मेहँदी लगा रहा है। उसे इस तरह मेहँदी लगाते समय कन्या के उस अलौकिक त्याग को देख कर मेरी आँखों में जल भर आया और मैंने रो दिया। ऐ मेरी बहन! जिस त्याग को ढूँढ़ते ढूँढ़ते सैकड़ों पुरुषों ने जाने हार दी और त्याग न कर सके; जिसकी तलाश में बड़े बड़े बलवान निकले और हार कर बैठ गये; क्या आज तूने उस अद्भुत त्यागादर्श रूपी वस्तु को सद्मुच ही पा लिया; शरीर को छोड़ बैठी; और हमसे जुदा होकर देवलोक में रहने लग गई। आ, मैं तेरे हाथों पर मेहँदी का रंग देता हूँ। तूने अपने प्राणों की आहुति दे दी है; मैं उस आहुति से प्रज्वलित हवन की अग्नि के रंग का चिह्न-मात्र तेरे हाथों और पाँवों पर प्रकाशित करता हूँ। तेरे वैराग्य और त्याग के यज्ञ को इस मेहँदी के रंग में आज मैं ससार के सामने लाता हूँ। मैं देखूँगा कि इस तेरे मेहँदी के रंग के सामने कितना भी गहरा गेरू का रंग मात होता है या नहीं। तू तो अपने आपको छोड़ बैठी। यह मेहँदी का रंग अब हम लगाकर तेरे त्याग को प्रकट करते हैं। तेरे प्राण-हीन हाथ मेरे हाथों पर पड़े क्या कह रहे हैं। तू तो चली गई, पर तेरे हाथ कह रहे हैं कि मेरी बहन ने अपने आपको अपने प्यारे और लाड़ले वीर के हाथ में दे दिया। वीर रोता है। तेरे त्याग के माहात्म्य ने सबको रुला-रुलाकर घरवालों को एक नया जीवन दिया है। सारे घर में पवित्रता छा गई है। शान्ति, आनन्द और मंगल हो रहा है। एक कंगाल गृहस्थ का घर इस समय भरा पूरा मालूम होता है। भूखों को अन्न मिलता है। सम्बन्धी मेहमानों को भोजन देने का सामर्थ्य इस घर में भी तेरे त्याग के बल से आ गया है। सचमुच कामधेनु आकाश से उतरकर ऐसे घर में निवास करती है। पिता अपनी पुत्री को देख कर चुपके-चुपके रोता है। पुत्री के महात्याग का असर हर एक के दिल पर ऐसा छा जाता है कि आजकल भी हमारे दूटे

## कन्या-दान

फूटे गृहस्थाश्रम के खँडरात में कन्या के विवाह के दिन दर्दनाक होते हैं। नयनों की गंगा घर में बहती है। माता-पिता और भाई को दैवी आदेश होता है कि अब कन्यादान का दिन समीप है। अपने दिल को इस गंगाजल से शुद्ध कर लो। यज्ञ होनेवाला है। ऐसा न हो कि तुम्हारे मन के सङ्कल्प साधारण क्षुद्र जीवन के सङ्कल्पों से मिलकर मलिन हो जायँ। ऐसा ही होता है। पुत्री-वियोग का दुःख, विवाह का मङ्गलाचार और नयनों की गंगा का स्नान इनके मन को एकाग्र कर देता है। माता, पिता, भाई, बहन और सखियाँ भी पतिवरा कन्या के पीछे आत्मिक और ईश्वरी नभ में बिना डोर पतङ्गों की तरह उड़ने लगते हैं। आर्य-कन्या का विवाह हिंदू-जीवन में एक अद्भुत आध्यात्मिक प्रभाव पैदा करनेवाला समय होता है, जिसे गहरी आँख से देखकर हमें सिर झुकाना चाहिए।

विवाह के बाहरी शोरोगुल में शामिल होना हमारा काम नहीं। इन पवित्रात्माओं की उच्च अवस्था का अनुभव करके उनको अपने आदर्श-पालन में सहायता देना है! धन्य हैं वे सम्बन्धी जो उन दिनों अपने शरीरों को ब्रह्मार्पण कर देते हैं। धन्य हैं वे मित्र जो रजोगुणी हँसी को त्यागकर उस काल की महत्ता का अनुभव करके, अपने दिल को नहला धुलाकर, उस एक आर्य पुत्री की पवित्रता के चिंतन में खो देते हैं। सब मिल-जुलकर आओ, कन्या-दान का समय अब समीप है। केवल वही सम्बन्धी और वही सखियाँ जो इस आर्य-पुत्री में तन्मय हो रही हैं उस वेदी के अन्दर आ सकती हैं। जिन्होंने कन्यादान के आदर्श के माहात्म्य को जाना है वही यहाँ उपस्थित हो सकते हैं। ऐसे ही पवित्र भावों से भरे हुए महात्मा विवाहमण्डप में जमा हैं। अग्नि प्रज्वलित है। हवन की सामग्री से सत्त्वगुणी सुगंध निकल-निकल कर सबको शान्त और एकाग्र कर रही है। तारागण

चमक रहे हैं। ध्रुव और सप्तर्षि पास ही आ खड़े हुए हैं। चन्द्रमा उपस्थित हुआ है। देवी और देवता इस देवलोक में विहार करनेवाली आर्य-पुत्री का विवाह देखने और उसे सौभाग्यशीला होने का आशीर्वाद देने आये हैं। समय पवित्र है। हृदय पवित्र है। वायु पवित्र है और देवी देवताओं की उपस्थिति ने सबको एकाग्र कर दिया है। अब कन्यादान का वक्त है। स्त्रियाँ ने कन्यादान के माहात्म्य के गीत अलापने शुरू किये हैं। सबके रोम खड़े हो रहे हैं। गले रुक रहे हैं। आँसू चल रहे हैं—

“बिछुड़ती दुलहन वतन से है जब खड़े हैं रोम और गला रुके हैं; कि फिर न आने की है कोई ढव खड़े हैं रोम और गला रुके हैं; यह दीनो-दुनिया तुम्हें मुबारक हमारा दूल्हा हमें सलामत; पै याद रखना यह आखिरी छवि खड़े हैं रोम और गला रुके हैं।”

( स्वामी राम )

अब प्यारा वीर देव-लोक में रमती देवी के समान अपनी समाधिस्थ बहन के शरीर को अपने हाथों में उठाये इस देवी के भाग्यवान् पति के साथ प्रज्वलित अग्नि के इर्द-गिर्द फेरे देता है। इस सोहने नौजवान का दिल भी अजीब भावों से भर गया है। शरीर उसका भी उसके मन से गिर रहा है। उसे एक पवित्रात्मा कन्या का दिल, जान, प्राण सबका सब अभी दान मिलता है। समय की अजीब पवित्रता, माता-पिता, भाई, बहन और सखियों के दिलों की आशायें, सत्वगुणाँ संकल्पों का समूह, आये हुए देवी-देवताओं के आशीर्वाद, अग्नि और मेहँदी के रंग की लाली, कन्या की निरवलम्बता, अनाथता, त्याग, वैराग्य और दिव्य अवस्था आदि ये सबके सब इस नौजवान के दिल पर ऐसा आध्यात्मिक असर करते हैं कि सदा के लिए अपने आपको वह इस देवी के चरणों में अर्पण कर देता है। हमारे देश के इस पारस्परिक अर्पण का दिव्य समय ( Divine time of

## कन्या-दान

mutual self-surrender. = परस्पर आत्म समर्पण का द्वैती काल) कुल दुनिया के ऐसे समय में अधिक हृदयगम होता है। कन्या की समाधि अभी नहीं खुली। परन्तु ऐसी योग-निद्रा में सोई हुई पत्नी के ऊपर यह आर्य नौजवान न्यौछावर हो चुका। इसके लिए तो पहली बार ही प्रेम की बिजली इस तरह गिरी कि उसको खबर तक भी न हुई कि उसका दिल उसके पहलू में प्रेम-अग्नि में कब तड़पा कब उछला, कब कूदा और कब हवन हो गया। अब भाई अपनी बहन को अपने दिल में उसके पति के हवाले कर चुका। पिता और माता ने अपने नयनों में गंगा-जल लेकर अपने अंगों को धोया और अपनी मेहँदी रंगी पुत्री को उसके पति के हवाले कर दिया। ज्योंही उस कन्या का हाथ अपने पति के हाथ पर पड़ा त्योंही उस देवी की समाधि खुली। देवी और देवताओं ने भी पति और पत्नी के सिर पर हाथ रखकर अटल मुहाग का आशीर्वाद दिया। देवलोक में खुशी हुई। मातृलोक का यज्ञ पूरा हुआ। चन्द्रमा और तारागण, ध्रुव और सप्तर्षि इसके गवाह हुए। मानो ब्रह्मा ने स्वयं आकर इस संयोग को जोड़ा। फिर क्यों न पति और पत्नी परस्पर प्रेम में लीन हो? कुल जगत् टूट फूटकर प्रलयलीन हो गया, इस पत्नी के लिए केवल पति ही रह गया। और, इसी तरह, कुल जगत् टूटफूट प्रलयलीन हो गया; इस पति के लिए केवल पत्नी ही रह गई। क्या रँगोला जाड़ा है जो कुल जगत् को प्रलय-गर्भ में लीन कर अनन्ताकाश में प्रेम की बांसुरी बजाते हुए बिचर रहा है। प्यारे! हमारे यहाँ तो यही राधा-कृष्ण घर घर बिचरते हैं :—

“The reduction of the whole universe to a single being and the expansion of that single being even to God is love”.

—Victor Hugo

[ समस्त सृष्टि का एक भूत में परिणत हो जाना तथा उस एक भूत का देवत्व में विकास पाना ही प्रेम है । —विक्टर ह्यूगो ]

सौता ने बारह वर्ष का वनवास कबूल किया; महलों में रहना न कबूल किया । दमयन्ती जंगल जंगल नल के लिये रोती फिरी । सावित्री ने प्रेम के बल से यम को जातकर अपने पति को वापस लिया । गांधारी ने मारी उम्र अपनी आँखों पर पट्टी बाँधकर बिता दी ।

ब्राह्म-समाज के महात्मा भाई प्रतापचन्द्र मजूमदार अपने अमरीका के “लौवल नेकचर” में कन्यादान के असर को, जो उनके दिल पर हुआ था, अमरीका-निवासियों के सम्मुख इस तरह प्रकट करते हैं :—  
“यदि कुल संसार की स्त्रियाँ एक तरफ खड़ी हों और मेरी अपद प्रियतमा पत्नी दूसरी तरफ खड़ी हो तो मैं अपनी पत्नी ही की तरफ दौड़ जाऊँगा ।”

ऋषि लोग सँदेसा भेजते हैं कि इस आदर्श का पूर्ण अनुभव से पालन करने में कुल जगत् का कल्याण होगा । हे भारतवासियो ! इस यज्ञ के माहात्म्य का आध्यात्मिक पवित्रता से अनुभव करो । इस यज्ञ में देवी और देवताओं को निमंत्रित करने की शक्ति प्राप्त करो । विवाह को मखौल न जानो । यज्ञ का खेल न करो । झूठी खुदगर्जी की खातिर इस आदर्श को मटियामेट न करो । कुल जगत् के कल्याण को सोचो ।



## आचरण की सभ्यता—

विद्या, कला, कविता, साहित्य, धन और राजत्व से भी आचरण की सभ्यता अधिक ज्योतिष्मती है। आचरण की सभ्यता को प्राप्त करके एक कङ्काल आदमी राजाओं के दिलों पर भी अपना प्रभुत्व जमा सकता है। इस सभ्यता के दर्शन से कला, साहित्य और संगीत को अद्भुत सिद्धि प्राप्त होती है ! राग अधिक मृदु हो जाता है; विद्या का तोसरा शिव-नेत्र खुल जाता है, चित्र-कला का मौन राग अलापने लग जाता है; वक्ता चुप हो जाता है; लेखक की लेखनी थम जाती है; मूर्ति बनाने वाले के सामने नये कपोल, नये नयन और नयी छवि का दृश्य उपस्थित हो जाता है।

आचरण की सभ्यतामय भाषा सदा मौन रहती है। इस भाषा का निघण्टु शुद्ध श्वेत पत्रों वाला है। इसमें नाम मात्र के लिये भी शब्द नहीं। यह सभ्याचरण नाद करता हुआ भी मौन है, व्याख्यान देता हुआ भी व्याख्यान के पीछे छिपा है, राग गाता हुआ भी राग के सुर के भीतर पड़ा है ॥ मृदु वचनों की मिठास में आचरण की सभ्यता मौन रूप से खुली हुई है। नम्रता, दया, प्रेम और उदारता सब के सब सभ्याचरण की भाषा के मौन व्याख्यान हैं। मनुष्य के जीवन पर मौन व्याख्यान का प्रभाव चिरस्थायी होता है और उसकी आत्मा का एक अंग हो जाता है।

न काला, न नीला, न पीला, न सुफेद, न पूर्वी, न पश्चिमी न उत्तरी, न दक्षिणी, बे नाम, बे निशान, बे मकान—विशाल आत्मा के आचरण से मौनरूपिणी मुगंधि सदा प्रसारित हुआ करती है। इसके मौन से प्रसृत प्रेम और पवित्रता-धर्म सारे जगत् का कल्याण करके विस्तृत होते हैं। इसकी उपस्थिति से मन और हृदय की ऋतु बदल जाते हैं (?)। तीक्ष्ण गरमी से जले भुने व्यक्ति आचरण के काले बादलों की बूदाबूदी से शीतल हो जाते हैं। मानसोत्पन्न शरदऋतु से क्लेशातुर हुए पुरुष इसकी सुगंधमय अटल वसंत ऋतु के आनन्द का पान करते हैं। आचरण के नेत्र के एक अश्रु से जगत् भर के नेत्र भीग जाते हैं। आचरण के आनन्द-नृत्य से उन्मदिष्ट होकर वृत्तों और पर्वतों तक के हृदय नृत्य करने लगते हैं। आचरण के मौन व्याख्यान से मनुष्य को एक नया जीवन प्राप्त होता है। नये नये विचार स्वयं ही प्रकट होने लगते हैं। सूखे काष्ठ सचमुच ही हरे हो जाते हैं। सूखे कूपों में जल भर आता है। नये नेत्र मिलते हैं। कुल पदार्थों के साथ एक नया मैत्री-भाव फूट पड़ता है। सूर्य, जल, वायु, पुष्प, पत्थर, घास, पात, नर, नारी और बालक तक में एक अश्रुतपूर्व सुन्दर मूर्ति के दर्शन होने लगते हैं।

(मौनरूपी व्याख्यान की महत्ता इतनी बलवती, इतनी अर्थवती और इतनी प्रभाववती होती है कि उसके सामने क्या मातृभाषा, क्या साहित्य-भाषा और क्या अन्य देश की भाषा सब की सब तुच्छ प्रतीत होती हैं। अन्य कोई भाषा दिव्य नहीं, केवल आचरण की मौन भाषा ही ईश्वरीय है।) विचार करके देखो, मौन व्याख्यान किस तरह आपके हृदय की नाड़ी-नाड़ी में सुन्दरता को पिरो देता है ! वह व्याख्यान ही क्या, जिसने हृदय की धुन को—मन के लक्ष्य को—ही न बदल दिया। चंद्रमा की मंद मद हँसी का तारागण के कटाक्ष-पूर्ण प्राकृतिक मौन व्याख्यान का—प्रभाव किसी कवि के दिल

## आचरण की सभ्यता

में घुसकर देखो। सूर्यास्त होने के पश्चात्, श्रीकेशवचंद्र सेन और महर्षि देवेन्द्रनाथ ठाकुर ने सारी रात, एक क्षण की तरह, गुजार दी; यह तो कल की बात है। कमल और नरगिस में नयन देखने वाले नेत्रों से पूछो कि मौन व्याख्यान की प्रभुता कितनी दिव्य है।

प्रेम की भाषा शब्द-रहित है। नेत्रों की, कपोलों की, मस्तक की भाषा भी शब्द-रहित है। जीवन का तत्त्व भी शब्द से परे है। सच्चा आचरण—प्रभाव, शील, अचल-स्थिति-संयुक्त आचरण—न तो साहित्य के लंबे व्याख्यानों में गड़ा जा सकता है; न वेद की श्रुतियों के मोठे उपदेश से; न अंजील से; न कुरान से; न धर्मचर्चा से, न केवल सत्सङ्ग से। जीवन के अरण्य में घुसे हुए पुरुष के हृदय पर प्रकृति और मनुष्य के जीवन के मौन व्याख्यानों के यत्न से सुनार के छोटे हथौड़े की मंद मंद चोटों की तरह, आचरण का रूप प्रत्यक्ष हांता है।

बर्फ का दुपट्टा बाँधे हुए हिमालय इस समय तो अति सुन्दर, अति ऊँचा और अति गौरवान्वित मालूम होता है; परन्तु प्रकृति ने अगणित शताब्दियों के परिश्रम से रेत का एक एक परमाणु समुद्र के जल में डुबो डुबोकर और उनको अपने विचित्र हथौड़े से मुडौल कर करके इस हिमालय के दर्शन कराये हैं। आचरण भी हिमालय की तरह एक ऊँचे कलश वाला मन्दिर है। यह वह आम का पेड़ नहीं जिसको मदारी एक क्षण में, तुम्हारी आँखा में मिट्टी डालकर, अपनी हथेली पर जमा दे। इसके बनने में अनन्त काल लगा है। पृथ्वी बन गई, सूर्य बन गया, तारागण आकाश में दौड़ने लगे; परन्तु अभी तक आचरण के सुन्दर रूप के पूर्ण दर्शन नहीं हुए। कहीं कहीं उसकी अत्यल्प छटा अवश्य दिखाई देती है।

पुस्तकों में लिखे हुए नुसखा से तो और भी अधिक बदहजमी हो जाती है। सारे वेद और शास्त्र भी यदि धोलकर पी लिये जायँ तो भी आदर्श आचरण की प्राप्ति नहीं होती। आचरण-प्राप्ति की इच्छा

रखने वाले को तर्क-वितर्क से कुछ भी सहायता नहीं मिलती। शब्द और वाणी तो साधारण जीवन के चोचले हैं। ये आचरण की गुप्त गुहा में नहीं प्रवेश कर सकते। वहाँ इनका कुछ भी प्रभाव नहीं पड़ता। वेद इस देश के रहने वालों के विश्वासानुसार ब्रह्म-वाणी हैं, परन्तु इतना काल व्यतीत हो जाने पर भी आज तक वे समस्त जगत् की भिन्न भिन्न जातियों को संस्कृत भाषा न बुला सके—न समझा सके—न सिखा सके। यह बात ही कैसे? ईश्वर तो मदा मौन है। ईश्वरीय मौन शब्द और भाषा का विषय नहीं। वह केवल आचरण के कान में गुरु-मन्त्र फूँक सकता है। वह केवल ऋषि के दिल में वेद का ज्ञानोदय कर सकता है।

किसी का आचरण वायु के झोके से हिल जाय तो हिल जाय, परन्तु साहित्य और शब्द की गोलन्दार्जी और आँधी से उसके सिर के एक बाल तक का बाँका न होना एक साधारण बात है। पुष्प की कोमल पँखड़ी के स्पर्श से किसी को रोमाञ्च हो जाय; जल की शीतलता से क्रोध और विषय-वासना शांत हो जाय; बर्फ के दर्शन से पवित्रता आ जाय; सूर्य की ज्योति से नेत्र खुल जाय—परन्तु अंगरेजी भाषा का व्याख्यान—चाहे वह कारलायल ही का लिग्वी हुआ क्यों न हो—बनारस में पंडितों के लिये रामरोला ही है। इसी तरह न्याय और व्याकरण की बारीकियों के विषय में पंडित के द्वारा कोई गहरी चर्चा और शास्त्रार्थ संस्कृत-ज्ञान-हीन पुरुषों के लिये स्टीम इंजन के फफ-फफ शब्द से अधिक अर्थ नहीं रखते। यदि आप कहें व्याख्यानों द्वारा, उपदेशों द्वारा, धर्म चर्चा द्वारा कितने ही पुरुषों और नारियों के हृदय पर जीवन-व्यापी प्रभाव पड़ा है, तो उत्तर यह है कि प्रभाव शब्द का नहीं पड़ता—प्रभाव तो सदा सदाचरण का पड़ता है। साधारण उपदेश तो हर गिरजे, हर मन्दिर और हर मसजिद में होते हैं, परन्तु उनका प्रभाव तभी हम पर पड़ता है जब गिरजे का

## आचरण की सम्यता

पादड़ी स्वयं ईसा होता है—मन्दिर का पुजारी स्वयं ब्रह्मर्षि होता है—मसजिद का मुल्ला स्वयं पैगम्बर और रमूल होता है ।

यदि एक ब्राह्मण किमी डूबती कन्या का रक्षा के लिये—चाहे वह कन्या जिस जाति की हो, जिस किसी मनुष्य की हो, जिस किसी देश की हो—अपने आपको गंगा में फेक दे—चाहे फिर उसके प्राण यह काम करने में रहे चाहे जायँ—तो इस कार्य के प्रेरक आचरण की मौनमयी भाषा किस देश में, किस जाति में, और किस काल में, कौन नहीं समझ सकता ? प्रेम का आचरण, दया का आचरण—क्या पशु और क्या मनुष्य—जगत् के सभी चराचर आप ही आप समझ लेते हैं । जगत् भर के बच्चों की भाषा इस भाष्य-हीन भाषा का चिह्न है । बालकों के इस शुद्ध मौन का नाद और हास्य भी सब देशों में एक ही सा पाया जाता है ।

एक दफे एक राजा जंगल में शिकार खेलते खेलते रास्ता भूल गया । उसके साथी पीछे रह गये । घोड़ा उसका मर गया । बंदूक हाथ में रह गई । रात का समय आ पहुँचा । देश बर्फानी, रास्ते पहाड़ी । पानी बरस रहा है । रात अँधेरी है । ओले पड़ रहे हैं । ठंडी हवा उसकी हड्डियों तक को हिला रही है । प्रकृति ने, इस घड़ी, इस राजा को अनाथ बालक से भी अधिक बे-सरो-सामान कर दिया । इतने में दूर एक पहाड़ी की चोटी के नीचे टिमटिमाती हुई बत्ती की लौ दिखाई दी । कई मील तक पहाड़ के ऊँचे नीचे उतार-चढ़ाव को पार करने से थका हुआ, भूखा और सर्दी से ठिठरा हुआ राजा उस बत्ती के पास पहुँचा । यह एक गरीब पहाड़ी किसान की कुटी थी । इसमें किसान, उसको स्त्री और उनके दो-तान बच्चे रहते थे । किसान शिकारी को अपनी झोपड़ी में ले गया । आग जलाई । उसके वस्त्र सुखाये । दो मोटी मोटी रोटियाँ और साग उसके आगे रखा । उसने खुद भी खाया और शिकारी को भी खिलाया । ऊन और रीछ के

चमड़े के नरम और गरम बिछौने पर उसने शिकारी को सुलाया । आप बे-बिछौने को भूमि पर सो रहा । धन्य है तू, मनुष्य ! तू ईश्वर से क्या कम है ! तू भी तो पवित्र और निष्काम रक्षा का कर्त्ता है । तू भी तो आपन्न जनों का आपत्ति से उद्धार करने वाला है ।

शिकारी कई रूसों का जार ही क्यों न हो, इस समय तो एक रोटी और गरम बिस्तर अग्नि की एक चिनगारी और टूटी छत पर— उसकी सारी राजधानियाँ बिक गईं । अब यदि वह अपना सारा राज्य उस किसान को, उसकी अमूल्य रक्षा के मोल में, देना चाहे तो भी वह तुच्छ है; यदि वह अपना दिल ही देना चाहे तो भी वह तुच्छ है । अब उम निर्धन और निरक्षर पहाड़ी किसान की दया और उदारता के कर्म के मौन व्याख्यान को देखो । चाहे शिकारी को पता लगे चाहे न लगे, परन्तु राजा के अन्तस् के मौन-जीवन में उसने ईश्वरीय श्रौदार्य की कलम गाड़ दी । शिकार में अचानक रास्ता भूल जाने के कारण जब इस राजा को ज्ञान का एक परमाणु मिल गया तब कौन कह सकता है कि शिकारी का जीवन अच्छा नहीं । क्या जङ्गल के ऐसे जीवन में, इसी प्रकार के व्याख्यानों से, मनुष्य का जीवन, शनैः शनैः, नया रूप धारण नहीं करता ? जिसने शिकारी के जीवन के दुःखों को नहीं सहन किया उसको क्या पता कि ऐसे जीवन की तह में किस प्रकार और किस मिठास के आचरण का विकास होता है । इसी तरह क्या एक मनुष्य के जीवन में और क्या एक जाति के जीवन में—पवित्रता और अपवित्रता भी जीवन के आचरण को भली भाँति गढ़ती है—और उस पर भली भाँति कुन्दन करती है । जगई और मधई यदि पक्के लुटेरे न होते तो महाप्रभु चैतन्य के आचरण-सम्बन्धी मौन व्याख्यान को ऐसी दृढ़ता से कैसे ग्रहण करते । नग्न नारी को स्नान करते देख सूरदासजी यदि कृष्णार्पण किये गये अपने हृदय को एक बार फिर उस नारी को सुन्दरता निरखने में न लगाते

## आचरण की सभ्यता

और उस समय फिर एक बार अपवित्र न होते तो खुरसागर में प्रेम का वह मौन व्याख्यान—आचरण का वह उत्तम आदर्श—कैसे दिखाई देता। कौन कह सकता है कि जीवन की पवित्रता और अपवित्रता के प्रतिद्वन्द्वी भाव से संसार के आचरणों के एक अद्भुत पवित्रता का विकास नहीं होता ! यदि मेरी साइलिन वेश्या न होती तो कौन उसे ईसा के पास ले जाता और ईसा के मौन व्याख्यान के प्रभाव से किस तरह आज वह हमारी पूजनीया माता बनती ? कौन कह सकता है कि ध्रुव की सौतेली माता अपनी कठोरता से ही ध्रुव को अटल बनाने में वैसी ही सहायक नहीं हुई जैसी की स्वयं ध्रुव की माता ।

मनुष्य का जीवन इतना विशाल है कि उसके आचरण को रूप देने के लिये नाना प्रकार के ऊँच नीच और भले बुरे विचार; अमीरी और गरीबी, उन्नति और अवनति इत्यादि सहायता पहुँचाते हैं। पवित्र अपवित्रता उतनी ही बलवती है, जितनी कि पवित्र पवित्रता। जो कुछ जगत् में हो रहा है वह केवल आचरण के विकास के अर्थ हो रहा है। अन्तरात्मा वही काम करती है जो बाह्य पदार्थों के संयोग का प्रतिबिम्ब होता है। जिनको हम पवित्रात्मा कहते हैं, क्या पता है, किन किन कृपों से निकल कर वे अब उदय को प्राप्त हुए हैं ? जिनको हम धर्मात्मा कहते हैं, क्या पता है, किन किन अधर्मों को करके वे धर्म-ज्ञान का पा सके हैं ? जिनको हम सभ्य कहते हैं और जो अपने जीवन में पवित्रता को ही सब कुछ समझते हैं, क्या पता है; वे कुछ काल पूर्व बुरी और अधर्म अपवित्रता में लिप्त रहे हों ? अपने जन्म-जन्मान्तरों के संस्कारों से भरी हुई अंधकार-मय कोठरी से निकलकर ज्योति और स्वच्छ वायु से परिपूर्ण खुले हुए देश में जब तक अपना आचरण अपने नेत्र न खोल चुका हो तब तक धर्म के गूढ़ तत्त्व कैसे समझ में आ सकते हैं। नेत्र-रहित को मूर्ख से क्या लाभ ? हृदय-रहित को प्रेम से क्या लाभ ? बहरे को राग से क्या लाभ ? कविता,

माहित्य, पीर, पैगम्बर, गुरु, आचार्य, ऋषि आदि के उपदेशों से लाभ उठाने का यदि आत्मा में बल नहीं तो उनसे क्या लाभ ? जब तक जीवन का बीज पृथ्वी के मल-मूत्र के ढेर में पड़ा है, अथवा जब तक वह खाद की गरमी से अङ्कुरित नहीं हुआ और प्रस्फुटित होकर उससे दो नए पत्ते ऊपर नहीं निकल आए, तब तक ज्योति और वायु उसके किस काम के ?

जगत् के अनेक सम्प्रदाय अनदेखी और अनजानी वस्तुओं का वर्णन करते हैं, पर अपने नेत्र तो अभी माया के पटल से बन्द हैं—और धर्मानुभव के लिए मायाजाल में उनका बन्द होना आवश्यक भी है। इस कारण मैं उनके अर्थ कैसे जान सकता हूँ ? वे भाव—यें आचरण—जो उन आचार्यों के हृदय में थे और जो उनके शब्दों के अन्तर्गत मौनावस्था में पड़े हुए हैं; उनके साथ मेरा सम्बन्ध जब तक मेरा भी आचरण उसी प्रकार का न हो जाय तब तक, हो ही कैसे सकता है ? ऋषि को तो मौन पदार्थ भी उपदेश दे सकते हैं; दूटे फूटे शब्द भी अपना अर्थ भासित कर सकते हैं, तुच्छ से भी तुच्छ वस्तु उसकी आँखों में उसी महात्मा का चिह्न है जिसका चिह्न उत्तम उत्तम पदार्थ है। राजा में फकीर छिपा है और फकीर में राजा ! बड़े से बड़े पंडित में मूर्ख छिपा है और बड़े से बड़े मूर्ख में पंडित। वीर में कायर और कायर में वीर सोता है। पापी में महात्मा और महात्मा में पापी डूबा हुआ है।

वह आचरण, जो धर्म-सम्प्रदायों के अनुच्चारित शब्दों को सुनता है, हममें कहाँ ? जब वही नहीं तब फिर क्यों न ये सम्प्रदाय हमारे मानसिक महाभारतों के कुरुक्षेत्र बनें ? क्यों न अप्रेम, अपवित्रता, हत्या और अत्याचार इन सम्प्रदायों के नाम से हमारा खून करें। कोई भी धर्मसम्प्रदाय आचरण-रहित पुरुषों के लिये कल्याणकारक नहीं हो सकता और आचरणवाले पुरुषों के लिये सभी धर्म-सम्प्रदाय

## आचरण की सभ्यता

कल्याणकारक हैं। सच्चा साधु धर्म को गौरव देता है, धर्म किसी को गौरवान्वित नहीं करता।

आचरण का विकास जीवन का परमोद्देश है। आचरण के विकास के लिये नाना प्रकार की सामाग्रियों का, जो संसार-संभूत शारीरिक, प्राकृतिक, मानसिक और आध्यात्मिक जीवन में वर्तमान है, उन सबकी सबका(?)—क्या एक पुरुष और क्या एक जाति के आचरण के विकास के साधनों के सम्बन्ध में विचार करना होगा। आचरण के विकास के लिये जितने कर्म हैं उन सबको आचरण के संघटन कर्ता धर्म के अङ्ग मानना पड़ेगा। चाहे कोई कितना ही बड़ा महात्मा क्यों न हो, वह निश्चयपूर्वक यह नहीं कह सकता कि यों ही करो, और किसी तरह नहीं। आचरण की सभ्यता की प्राप्ति के लिये वह सबको एक पथ नहीं बता सकता। आचरण-शील महात्मा स्वयं भी किसी अन्य की बनाई हुई सड़क से नहीं आया; उसने अपनी सड़क स्वयं ही बनाई थी। इसी से उसके बनाये हुए रास्ते पर चलकर हम भी अपने आचरण को आदर्श के ढाँचे में नहीं ढाल सकते। हमें अपना रास्ता अपने ही जीवन की कुदाली की एक एक चोट से रात-दिन बनाना पड़ेगा और उसी पर चलना भी पड़ेगा। हर किसी को अपने देश-कालानुसार रामप्राप्ति के लिये अपनी नैया आप ही बनानी पड़ेगी और आप ही चलानी भी पड़ेगी।

यदि मुझे ईश्वर का ज्ञान नहीं तो ऐसे ज्ञान ही से क्या प्रयोजन ? जब तक मैं अपना हथौड़ा ठीक ठीक चलाता हूँ और रूपहीन लोहे को तलवार के रूप में गढ़ देता हूँ तब तक यदि मुझे ईश्वर का ज्ञान नहीं तो नही होने दो। उस ज्ञान से मुझे प्रयोजन ही क्या ? जब तक मैं अपना उद्धार ठीक और शुद्ध रीति से किये जाता हूँ तब तक यदि मुझे आध्यात्मिक पवित्रता का भान नहीं होता तो न होने दो। उससे

सिद्धि ही क्या हो सकती है ? जब तक किसी जहाज के कप्तान के हृदय में इतनी वीरता भरी हुई है कि वह महाभयानक समय में भी अपने जहाज को नहीं छोड़ता तब तक यदि वह मेरी और तेरी दृष्टि में शराबी और स्त्रैण है तो उसे वैसा ही होने दो । उसकी बुरी बातों से हमें प्रयोजन ही क्या ? आधी हो—बरफ हो—बिजली की कड़क हो—समुद्र का तूफान हो—वह दिन रात आँख खोले अपने जहाज की रक्षा के लिये जहाज के पुल पर धूमता हुआ अपने धर्म का पालन करता है । वह अपने जहाज के साथ समुद्र में डूब जाता है; परन्तु अपना जीवन बचाने के लिये कोई उपाय नहीं करता । क्या उसके आचरण का यह अंश मेरे-तेरे बिस्तर और आसन पर बैठे बिठाये कहे हुए निरर्थक शब्दों के भाव से कम महत्त्व का है ?

न मैं किसी गिरजे में जाता हूँ और न किसी मन्दिर में; न मैं नमाज पढ़ता हूँ और न रोजा ही रखता हूँ; न संध्या ही करता हूँ और न कोई देवपूजा ही करता हूँ; न किसी आचार्य्य के नाम का मुझे पता है और न किसी के आगे मैंने सिर ही झुकाया है । तो इससे प्रयोजन ही क्या और इससे हानि भी क्या ? मैं तो अपनी खेती करता हूँ; अपने हल और बैलों को प्रातःकाल उठकर प्रणाम करता हूँ; मेरा जीवन जंगल के पेड़ों और पक्षियों की सङ्गति में गुजरता है; आकाश के बादलों को देखते मेरा दिल निकल जाता है । मैं किसी को धोखा नहीं देता; हाँ, यदि मुझे कोई धोखा दे तो उससे मेरी कोई हानि नहीं । मेरे खेत में अन्न उग रहा है; मेरा घर अन्न से भरा है; बिस्तर के लिये मुझे एक कमली काफी है, कमर के लिये लंगोटी और सिर के लिये एक टोपी बस है । हाथ-पाँव मेरे बलवान् हैं; शरीर मेरा अरोग्य है; भूख खूब लगती है; बाजरा और मकई, छाछ और दही, दूध और मक्खन मुझे और मेरे बच्चों को खाने के लिये मिल जाता है । क्या इस किसान की सादगी और सचाई में वह मिठास

## आचरण की सभ्यता

नहीं जिसकी प्राप्ति के लिये भिन्न-भिन्न धर्म सम्प्रदाय लंबी-चौड़ी और चिकनी-चुपनी बातों द्वारा दाँता दिया करते हैं ?

जब साहित्य, सङ्गीत और कला की अति ने रोम को घोंड़े से उतारकर सखमल के गद्दों पर लिटा दिया—जब आलस्य और विषय-विकार की लम्पटता ने जङ्गल और पहाड़ की साफ हवा के असभ्य और उद्दण्ड जीवन से रोमवालों का मुख मोड़ दिया तब रोम नरम तकियों और बिस्तरों पर ऐसा सोया कि अब तक न आप जागा और न कोई उसे जगा ही सका। एंग्लो-सैक्सन जाति ने जो उच्च पद प्राप्त किया वह उसने अपने समुद्र, जंगल और पर्वत में सम्बन्ध रखनेवाले जीवन से ही प्राप्त किया। इस जाति की उन्नति लड़ने मिड़ने, मरने मारने, लूटने और लूटे जाने, शिकार करने और शिकार होनेवाले जीवन का ही परिणाम है। लोग कहते हैं, केवल धर्म ही जाति को उन्नत करता है। यह ठीक है, परन्तु वह धर्माङ्कुर, जो जाति को उन्नत करता है, इस असभ्य, कमोने और पाप-मय जीवन की गदी राख के ढेर के ऊपर नहीं उगता है। मन्दिरों और गिरजों को मन्द मन्द टिमटिमाती हुई मोमबत्तियों की रोशनी से घेरप इस उच्चावस्था को नहीं पहुँचा। वह कठोर जीवन, जिसको देशदेशान्तरों को ढूँढ़ते फिरते रहने के बिना शान्ति नहीं मिलती; जिसकी अन्त-ज्वाला दूसरी जातियों को जीतने, लूटने, मारने और उन पर राज करने के बिना मन्द नहीं पड़ती—केवल वही विशाल जीवन समुद्र का छाती पर मूँग दलकर और पहाड़ों को फाँदकर उनको उस महानता को ओर ले गया और ले जा रहा है। राबिन हुड की प्रशंसा में इङ्गलैंड के जो कवि अपनी सारी शक्ति खर्च कर देते हैं उन्हें तत्त्वदर्शी कहना चाहिये; क्योंकि राबिन हुड जैसे भौतिक पदार्थों से ही नेलसन और वेलिंगटन जैसे अंगरेज वीरों की हड्डियाँ तैयार हुई थीं। लड़ाई के आजकल के सामान—गोले, बारूद, जंगी जहाज और तिजारी

वेड़ों आदि—को देखकर कहना पड़ता है कि इनसे वर्तमान सभ्यता से भी कहीं अधिक उच्च सभ्यता का जन्म होगा ।

यदि योरप के समुद्रों में जंगी जहाज मस्खियों की तरह न फैल जाते और योरप का घर घर सोने और हीरे से न भर जाता तो वहाँ पदार्थ-विद्या के सच्चे आचार्य और ऋषि कभी न उत्पन्न होते । पश्चिमी ज्ञान से मनुष्य मात्र को लाभ हुआ है । ज्ञान का वह मेहरा—बाहरी सभ्यता की अन्तर्वर्तिनी आध्यात्मिक सभ्यता का वह मुकुट—जो आज मनुष्य जाति ने पहन रखा है योरप को कदापि न प्राप्त होता, यदि धन और तेज को एकत्र करने के लिए योरपनिवासी इतने कर्मने न बनते । यदि सारे पूर्वी जगत् ने इस महत्ता के लिए अपनी शक्ति से अधिक भी चंदा देकर सहायता की तो बिगड़ क्या गया ? एक तरफ जहाँ योरप के जीवन का एक अंश असभ्य प्रतीत होता है—कर्मना और कायरता से भरा हुआ मालूम होता है—वहीं दूसरी ओर योरप के जीवन का वह भाग, जिसमें विद्या और ज्ञान के ऋषियों का सूर्य चमक रहा है, इतना महान् है कि थोड़े ही समय में पहले अंश को मनुष्य अवश्य ही भूल जायेंगे ।

धर्म और आध्यात्मिक विद्या के पौधे को ऐसी आरोग्य-वर्धक भूमि देने के लिये, जिससे वह प्रकाश और वायु में सदा खिलता रहे, सदा फूलता रहे, सदा फलता रहे, यह आवश्यक है कि बहुत से हाथ एक अनंत प्रकृति के ढेर को एकत्र करते रहें । धर्म की रक्षा के लिये क्षत्रियों को सदा ही कमर बाँधे हुए सिपाही बने रहने का भी तो यही अर्थ है । यदि कुल समुद्र का जल उड़ा दो तो रेडियम धातु का एक कण कहीं हाथ लगेगा ! आचरण का रेडियम—क्या एक पुरुष का, और क्या जाति का, और क्या एक जगत् का—सारी प्रकृति को खाद बनाये बिना—सारी प्रकृति को हवा में उड़ाये बिना भला कब मिलने का है ? प्रकृति को मिथ्या करके नहीं

## आचरण की सभ्यता

उड़ाना; उसे उड़ाकर मिथ्या करना है ? समुद्रों में डोरा डालकर अमृत निकाला है । सो भी कितना ? जरा सा ! संसार की खाक छानकर आचरण का स्वर्ण हाथ आता है । क्या बैठे बिठाए भी वह मिल सकता है ?

हिंदुओं का सबध यदि किसी प्राचीन असभ्य जाति के साथ रहा होता तो उनके वर्तमान वंश में अधिक बलवान् श्रेष्ठी के मनुष्य होते— तो उनमें भी ऋषि, पराक्रमी, जनरल और धीर वीर पुरुष उत्पन्न होते । आजकल तो वे उपनिषदों के ऋषियों के पवित्रता-मय प्रेम के जीवन को देख देखकर अहङ्कार में मग्न हो रहे हैं और दिन पर दिन अधोगति की ओर जा रहे हैं । यदि वे किसी जंगली जाति की सतान होते तो उनमें भी ऋषि और बलवान् योद्धा होते । ऋषियों को पैदा करने के योग्य असभ्य पृथ्वी का बन जाना तो आसान है; परन्तु ऋषियों को अपनी उन्नति के लिये राख और पृथ्वी बनाना कठिन है; क्योंकि ऋषि तो केवल अनन्त प्रकृति पर सजते हैं; हमारी जैसी पुष्प-शय्या पर सुरक्षा जाते हैं । माना कि प्राचीन काल में, योरोप में, सभा असभ्य थे; परन्तु आजकल तो हम असभ्य हैं । उनकी असभ्यता के ऊपर ऋषि-जीवन की उच्च सभ्यता फूल रही है और हमारे ऋषियों के जीवन के फूल की शय्या पर आजकल असभ्यता का रंग चढ़ा हुआ है । सदा ऋषि पैदा करते रहना, अर्थात् अपनी ऊँची चोटी के ऊपर इन फूलों को सदा धारण करते रहना ही जीवन के नियमों का पालन करना है ।

तारागणों को देखते देखते भारतवर्ष अब समुद्र में गिरा कि गिरा । एक कदम और, और धम से नीचे ! कारण इसका केवल यही है कि यह अपने अटूट स्वप्न में देखता रहा है और निश्चय करता रहा है कि मैं रोटी के बिना जी सकता हूँ; हवा में पद्मासन जमा सकता हूँ; पृथ्वी से अपना आसन उठा सकता हूँ; योगसिद्धि द्वारा

सूर्य और ताराओं के गूढ़ भेदों को जान सकता हूँ; समुद्र की लहरों पर बेखटके सो सकता हूँ। यह इसी प्रकार के स्वप्न देखता रहा, परन्तु अब तक न संसार ही की और न राम ही की दृष्टि में इसका एक भी बचन सत्य सिद्ध हुआ। यदि अब भी इसकी निद्रा न खुली तो बेधड़क शंख फूँक दो! कूच का घड़ियाल बजा दो! कह दो, भारतवासियों का इस असार संसार से कूच हुआ!

लेखक का तात्पर्य केवल यह है कि आचरण केवल मन के स्वप्नों से कभी नहीं बना करता। उसका सिर तो शिलाओं के ऊपर घिस घिसकर बनता है; उसके फूल तो सूर्य की गरमी और समुद्र के नमकीन पानी से बारम्बार भीगकर और सूखकर अपनी लाली पकड़ते हैं।

हजारों साल से धर्म-पुस्तकें खुली हुई हैं। अभी तक उनसे तुम्हें कुछ विशेष लाभ नहीं हुआ। तो फिर अपने हठ में पड़े क्यों मर रहे हो? अपनी अपनी स्थिति को क्यों नहीं देखते? अपनी अपनी कुदाली हाथ में लेकर क्यों आगे नहीं बढ़ते? पीछे मुड़ मुड़कर देखने से क्या लाभ? अब तो खुले जगत् में अपने अश्वमेध यज्ञ का घोड़ा छोड़ दो। तुममें से हर एक को अपना अश्वमेध करना है। चलो तो सही। अपने आपकी परीक्षा करो।

धर्म के आचरण की प्राप्ति यदि ऊपरी आडम्बरों से होती तो आजकल भारत-निवासी सूर्य के समान शुद्ध आचरण वाले हो जाते। भाई! माला से तो जप नहीं होता। गङ्गा नहाने से तो तप नहीं होता। पहाड़ों पर चढ़ने से प्राणायाम हुआ करता है, समुद्र में तैरने से नेती धुलती है; आँधी, पानी और साधारण जीवन के ऊँच-नीच, गरमी-सरदी, गरीबी-अमीरी को झेलने से तप हुआ करता है। आध्यात्मिक धर्म के स्वप्नों की शोभा तभी भली लगती है जब आदमी अपने जीवन का धर्म पालन करे। खुले समुद्र में अपने जहाज पर बैठ कर ही समुद्र की आध्यात्मिक शोभा का विचार होता है। भूखे को तो

## आचरण की सम्यता

चंद्र और सूर्य भी केवल आटे की बड़ी बड़ी दो रोटियाँ से प्रतीत होते हैं। कुटिया में बैठकर ही धूप, आँधी और बर्फ की दिव्य शोभा का आनन्द आ सकता है। प्राकृतिक सम्यता के आने ही पर मानसिक सम्यता आती है और तभी स्थिर भी रह सकती है। मानसिक सम्यता के होने पर ही आचरण-सम्यता की प्राप्ति सम्भव है, और तभी वह स्थिर भी हो सकती है। जब तक निर्धन पुरुष पाप से अपना पेट भरता है तब तक धनवान् पुरुष के शुद्धाचरण की पूरी परीक्षा नहीं। इसी प्रकार जब तक अज्ञानी का आचरण अशुद्ध है, तब तक शानवान् के आचरण की पूरी परीक्षा नहीं—तब तक जगत् में, आचरण की सम्यता का राज्य नहीं।

आचरण की सम्यता का देश ही निराला है ! उसमें न शारीरिक झगड़े हैं, न मानसिक, न आध्यात्मिक। न उसमें विद्रोह है; न जंग ही का नामोनिशान है और न वहाँ कोई ऊँचा है न नीचा। न कोई वहाँ धनवान् है और न कोई वहाँ निर्धन। वहाँ प्रकृति का नाम नहीं वहाँ तो प्रेम और एकता का अखंड राज्य रहता है।

जिस समय बुद्धदेव ने स्वयं अपने हाथों से हाफिज शीराजी का सीना उलट कर उसे मौन-आचरण का दर्शन कराया उस समय फारस में सारे बौद्धों को निर्वाण के दर्शन हुए और सब के सब आचरण की सम्यता के देश को प्राप्त हो गए।

जब पैगम्बर मुहम्मद ने ब्राह्मण को चीरा और उसके मौन आचरण को नंगा किया तब सारे मुसलमानों को आश्चर्य हुआ कि काफिर में मोमिन किस प्रकार गुप्त था। जब शिव ने अपने हाथ से ईसा के शब्दों को परे फेंककर उसकी आत्मा के नङ्गे दर्शन कराये तब हिन्दू चकित हो गये कि वह नग्न करने अथवा नग्न होने वाला उनका कौन सा शिव था ? हम तो एक दूसरे में छिपे हुए हैं। हर एक पदार्थ को परमाणुओं में परिणत करके उसके प्रत्येक परमाणु में अपने आपको

ढूँढ़ना—अपने आपको एकत्र करना—अपने आचरण को प्राप्त करना है। आचरण की प्राप्ति एकता की दशा की प्राप्ति है। चाहे फूलों की शय्या हो चाहे काँटों की; चाहे निर्धन हो चाहे धनवान; चाहे राजा हो चाहे किसान; चाहे रोगी हो चाहे नीरोग—हृदय इतना विशाल हो जाता है कि उसमें सारा संसार बिस्तर लगाकर आनन्द से आराम कर सकता है; जीवन आकाशवत् हो जाता है और नाना रूप और रङ्ग अपनी अपनी शोभा में बेखटके निर्भय होकर स्थित रह सकते हैं। आचरण वाले नयनों का मौन व्याख्यान केवल यह है—“सब कुछ अच्छा है, सब कुछ भला है”। जिस समय आचरण की सभ्यता संसार में आती है उस समय नीले आकाश से मनुष्य को वेद-ध्वनि सुनाई देती है, नर-नारी पुष्पवत् खिलते जाते हैं; प्रभात हो जाता है, प्रभात का गजर बज जाता है, नारद की वीणा अलापने लगती है, ध्रुव का शख गूँज उठता है, प्रह्लाद का नृत्य होता है, शिव का डमरू बजता है, कृष्ण की बाँसुरी की धुन प्रारम्भ हो जाती है। जहाँ ऐसे शब्द होते हैं, जहाँ ऐसे पुरुष रहते हैं, जहाँ ऐसी ज्योति होती है वही आचरण की सभ्यता का सुनहरा देश है। वही देश मनुष्य का स्वदेश है। जब तक घर न पहुँच जाय, सोना अच्छा नहीं, चाहे वेदों में, चाहे इंजील में, चाहे कुरान में, चाहे त्रिपीठक में, चाहे इस स्थान में चाहे उस स्थान में कहीं भी सोना अच्छा नहीं। आलस्य मृत्यु है। लेख तो पेड़ों के चित्र सदृश होते हैं, पेड़ तो होते ही नहीं जो फल पावे। लेखक ने यह चित्र इसलिये भेजा है कि सरस्वती में चित्र को देखकर शायद कोई असली पेड़ को जाकर देखने का यत्न करे।

## मजदूरी और प्रेम—

हल चलाने और मेड़ चराने वाले प्रायः स्वभाव से ही साधु होते हैं। हल चलाने वाले अपने शरीर का हवन किया करते हैं। खेत उनकी हवनशाला है। उनके हवनकुण्ड की ज्वाला की किरणें चावल के लम्बे और सुफेद दानों के रूप में निकलती हैं। गेहूँ के लाल लाल दाने इस अग्नि की चिनगारियों की डलियाँ सी हैं। मैं जब कभी अनार के फूल और फल देखता हूँ तब मुझे बाग के माली का रुधिर याद आ जाता है। उसकी मेहनत के कण जमीन में गिरकर उगे हैं, और हवा तथा प्रकाश की सहायता से मीठे फलों के रूप में नजर आ रहे हैं। किसान मुझे अन्न में, फूल में, फल में आहुति हुआ सा दिखाई पड़ता है। कहते हैं, ब्रह्माहुति से जगत् पैदा हुआ है। अन्न पैदा करने में किसान भी ब्रह्मा के समान है। खेती उसके ईश्वरी प्रेम का केन्द्र है। उसका सारा जीवन पत्ते-पत्ते में, फूल-फूल में, फल-फल में बिखर रहा है। वृक्षों की तरह उसका भी जीवन एक प्रकार का मौन जीवन है। वायु, जल, पृथ्वी, तेज और आकाश की नीरोगता इसी के हिस्से में है। विद्या यह नहीं पढ़ा; जप और तप यह नहीं करता; सन्धा-वन्दनादि इसे नहीं आते; ज्ञान, ध्यान का इसे पता नहीं; मन्दिर, मसजिद, गिरजे से इसे कोई सरोकार नहीं; केवल साग-पात खाकर ही यह अपनी भूख निवारण कर लेता है।

ठण्डे चरमों और बहती हुई नदियों के शीतल जल से यह अपनी प्यास बुझा लेता है। प्रातःकाल उठकर यह अपने हल बैलों को नमस्कार करता है और हल जोतने चल देता है। दोपहर की धूप इसे भाती है। इसके बच्चे मिट्टी ही में खेल खेलकर बड़े हो जाते हैं। इसको और इसके परिवार को बैल और गौवों से प्रेम है। उनकी यह सेवा करता है। पानी बरसानेवाले के दर्शनार्थ इसकी आँखे नीले आकाश की ओर उठती हैं। नयनों की भाषा में यह प्रार्थना करता है। सायं और प्रातः, दिन और रात, विधाता इसके हृदय में अचिन्तनीय और अद्भुत आध्यात्मिक भावों की वृष्टि करता है। यदि कोई इसके घर आ जाता है तो यह उसको मृदु वचन, मीठे जल और अन्न से तृप्त करता है। धोखा यह किसी को नहीं देता। यदि इसको कोई धोखा दे भी दे, तो उसका इसे ज्ञान नहीं होता; क्योंकि इसकी खेती हरी भरी है; गाय इसकी दूध देती है; स्त्री इसकी आज्ञाकारिणी है; मकान इसका पुण्य और आनन्द का स्थान है। पशुओं को चराना, नहलाना, खिलाना, पिलाना, उनके बच्चों को अपने बच्चों की तरह सेवा करना, खुले आकाश के नीचे उनके साथ राते गुजार देना क्या स्वाध्याय से कम है? दया, वीरता और प्रेम जैसा इन किसानों में देखा जाता है, अन्यत्र मिलने का नहीं। गुरु नानक ने ठीक कहा है—“भोले भाव मिलें रघुराई।” भोले भाले किसानों को ईश्वर अपने खुले दीदार का दर्शन देता है। उनकी फूस की छतों में से सूर्य और चंद्रमा छन छनकर उनके बिस्तरों पर पड़ने हैं। ये प्रकृति के जवान साधु हैं। जब कभी मैं इन बे-मुकुट के गोपालों के दर्शन करता हूँ, मेरा सिर स्वयं ही मुक जाता है। जब मुझे किसी फकीर के दर्शन होते हैं तब मुझे मालूम होता है कि नङ्गे सिर, नङ्गे पाँव, एक टोपी सिर पर, एक लँगोटी कमर में, एक काली कमली कन्धे पर, एक लम्बी लाठी हाथ में लिये हुए गौवों का मित्र, बैलों का

## मजदूरी और प्रेम

हमजोली, पक्षियों का महाराज, महाराजाओं का अन्नदाता, बादशाहों को ताज पहनाने और सिंहासन पर बिठानेवाला, भूखों और नंगों का पालनेवाला, समाज के पुष्पोद्यान का माली और खेतों का वाली जा रहा है।

एक बार मैंने एक बुढ़े गड़रिये को देखा। घना जङ्गल है। हरे हरे वृक्षों के नीचे उसकी सुफेद ऊनवाली भेड़ें अपना मुँह नीचे किये हुए कोमल कोमल पक्षियों खा रही हैं। गड़रिये का गड़रिया बैठा आकाश की ओर देख रहा है। ऊन कातता जाता है। उसकी आँखों में प्रेम-लाली छाई हुई है। वह नीरोगता की पवित्र मदिरा से मस्त हो रहा है। बाल उसके सारे सुफेद हैं। और क्यों न सुफेद हों? सुफेद भेड़ों का मालिक जो ठहरा। परन्तु उसके कपोलों से लाली फूट रही है। बरफानी देशों में वह मानों विष्णु के समान क्षीरसागर में लेटा है। उसकी प्यारी स्त्री उसके पास रोटी पका रही है। उसका दो जवान कन्याये उसके साथ जङ्गल जङ्गल भेड़ चराती घूमती हैं। अपने माता-पिता और भेड़ों को छोड़कर उन्होंने किसी और को नहीं देखा। मकान इनका बेमकान है; घर इनका बेघर है; ये लोग बेनाम और बेपता हैं।

किसी के घर कर में न घर कर बैठना इल दारे फानी में।

ठिकाना बेठिकाना और मकाँ बर ला-मकाँ रखना ॥

इस दिव्य परिवार को कुटी का जरूरत नहीं। जहाँ जाते हैं, एक घास की झोपड़ी बना लेते हैं। दिन को सूर्य और रात को तारागण इनके सखा हैं।

गड़रिये की कन्या पर्वत के शिखर के ऊपर खड़ी सूर्य का अस्त होना देख रही है। उसकी सुनहली किरणें इसके लावण्यमय मुख पर पड़ रही हैं। यह सूर्य को देख रही है और वह इसको देख रहा है।

हुए थे आँखों के कल इशारे इधर हमारे उधर तुम्हारे ।

चले थे अरकों के क्या फवारे इधर हमारे उधर तुम्हारे ॥

बोलता कोई भी नहीं । सूर्य उसकी युवावस्था की पवित्रता पर मुग्ध है और वह आश्चर्य के अवतार सूर्य की महिमा के तूफान में पड़ी नाच रही है ।

इनका जीवन बर्फ की पवित्रता से पूर्ण और वन की सुगन्धि से सुगन्धित है । इनके मुख, शरीर और अन्तःकरण सुफेद, इनकी बर्फ, पर्वत और भेड़े सुफेद । अपनी सुफेद भेड़ों में यह परिवार शुद्ध सुफेद ईश्वर के दर्शन करता है ।

सो खुदा को देखना हो तो मैं देखता हूँ तुमको ।

मैं देखता हूँ तुमको जो खुदा को देखना हो ॥

भेड़ों की सेवा ही इनकी पूजा है । जरा एक भेड़ बीमार हुई, सब परिवार पर विपत्ति आई । दिन रात उसके पास बैठे काट देते हैं । उसे अधिक पीड़ा हुई तो इन सब की आँखें शून्य आकाश में किसी को देखने लग गई । पता नहीं ये किसे बुलाती हैं । हाथ जोड़ने तक का इन्हे फुरसत नहीं । पर, हाँ, इन सब की आँखें किसी के आगे शब्द-रहित, सङ्कल्परहित मौन प्रार्थना में खुली हैं । दो रातें इसी तरह गुजर गईं । इनकी भेड़ अब अच्छी है । इनके घर मङ्गल हो रहा है । सारा परिवार मिलकर गा रहा है । इतने में नीले आकाश पर बादल धिर आये और झम झम बरसने लगे । मानों प्रकृति के देवता भी इनके आनन्द से आनन्दित हुए । बूढ़ा गड़रिया आनन्द-मत्त होकर नाचने लगा । वह कहता कुछ नहीं; पर किसी दैवी दृश्य को उसने अवश्य देखा है । वह फूले अङ्ग नहीं समाता, रग रग उसकी नाच रही है । पिता का ऐसा सुखी देख दोनों कन्याओं ने एक दूसरे का हाथ पकड़कर पहाड़ी राग अलापना आरम्भ कर दिया । साथ ही धम-धम थम-थम नाच की उन्होंने धूम मचा दी । मेरी आँखों के सामने ब्रह्मानन्द का

## मजदूरी और प्रेम

समाँ बाँध दिया। मेरे पास मेरा भाई खड़ा था। मैंने उससे कहा—  
“भाई, अब मुझे भी भेड़ें ले दो।” ऐसे ही मूक जीवन से मेरा भी कल्याण होगा। विद्या को भूल जाऊँ तो अच्छा है। मेरी पुस्तकें खोजावें तो उत्तम है। ऐसा होने से कदाचित् इस वनवासी परिवार की तरह मेरे दिल के नेत्र खुल जायें और मैं ईश्वरीय भूलक देख सकूँ। चन्द्र और सूर्य की विस्तृत ज्योति में जो वेदगान हो रहा है उसे इस गड़रिये की कन्याओं की तरह मैं सुन तो न सकूँ, परन्तु कदाचित् प्रत्यक्ष देख सकूँ। कहते हैं, ऋषियों ने भी, इनको देखा ही था, सुना न था। पण्डितों की ऊटपटांग बातों से मेरा जी उकता गया है। प्रकृति की मन्द मन्द हँसी मैं ये अनपढ़ लोग ईश्वर के हँसते हुए ओंठ देख रहे हैं। पशुओं के अज्ञान में गम्भीर ज्ञान छिपा हुआ है। इन लोगों के जीवन में अद्भुत आत्मानुभव भरा हुआ है। गड़रिये के परिवार की प्रेम-मजदूरी का मूल्य कौन दे सकता है ?

आपने चार आने पैसे मजदूर के हाथ में रखकर कहा—“यह लो दिन भर की अपनी मजदूरी” बाह क्या दिल्लगी है ! हाथ, पाँव, सिर, आँखें इत्यादि सब के सब अवयव उसने मजदूर की आपको अर्पण कर दिये। ये सब चीजें उसको तो मजदूरी थी ही नहीं, ये तो ईश्वरीय पदार्थ थे। जो पैसे आपने उसको दिये वे भी आपके न थे। वे तो पृथ्वी से निकली हुई धातु के टुकड़े थे; अतएव ईश्वर के निर्मित थे। मजदूरी का ऋण तो परस्पर की प्रेम-सेवा से चुकता होता है, अन्न-धन देने से नहीं। वे तो दोनों ही ईश्वर के हैं। अन्न-धन वही बनाता है और जल भी वही देता है। एक जिल्दसाज ने मेरी एक पुस्तक को जिल्द बाँध दी। मैं तो इस मजदूर को कुछ भी न दे सका। परन्तु उसने मेरी उम्र भर के लिए एक विचित्र वस्तु मुझे दे डाली। जब कभी मैंने उस पुस्तक को उठाया, मेरे हाथ जिल्दसाज के हाथ पर जा पड़े।

पुस्तक देखते ही मुझे जिल्दसाज याद आ जाता है। वह मेरा आम-रण मित्र हो गया है, पुस्तक हाथ में आते ही मेरे अन्तःकरण में रोज भरतमिलाप का सा समझ बँध जाता है।

गाढ़े की एक कमीज को एक अनाथ विधवा सारी रात बैठकर सीती है; साथ ही साथ वह अपने दुख पर रोती भी है—दिन को खाना न मिला। रात को भी कुछ मयस्सर न हुआ। अब वह एक एक टाँके पर आशा करती है कि कमीज कल तैयार हो जायगी, तब कुछ तो खाने को मिलेगा। जब वह थक जाती है तब ठहर जाती है। सूई हाथ में लिये हुए है, कमीज घुटने पर बिछी हुई है, उसकी आँखों की दशा उस आकाश की जैसी है जिसमें बादल बरसकर अभी अभी बिखर गये हैं। खुली आँखें ईश्वर के ध्यान में लीन हो रही हैं। कुछ काल के उपरान्त “हे राम” कहकर उसने फिर सीना शुरू कर दिया। इस माता और इस बहन की सिली हुई कमीज मेरे लिये मेरे शरीर का नहीं—मेरी आत्मा का वस्त्र है। इसका पहनना मेरी तीर्थ-यात्रा है। इस कमीज में उस विधवा के सुख-दुःख, प्रेम और पवित्रता के मिश्रण से मिली हुई जीवन रूपिणी गङ्गा की बाढ़ चली जा रही है। ऐसी मजदूरी और ऐसा काम—प्रार्थना, सन्ध्या और नमाज से क्या कम है? शब्दों से तो प्रार्थना हुआ नहीं करती। ईश्वर तो कुछ ऐसी ही मूक प्रार्थनाएँ सुनता है और तत्काल सुनता है।

मुझे तो मनुष्य के हाथ से बने हुए कामों में उनकी प्रेममय पवित्र आत्मा की सुगन्ध आती है! राफेल आदि के चित्रित चित्रों में उनकी कला-कुशलता को देख, इतनी सदियों के बाद भी **प्रेम-मजदूरी** उनके अन्तःकरण के सारे भावों का अनुभव होने लगता है। केवल चित्र का ही दर्शन नहीं, किंतु, साथ ही, उसमें छिपी चित्रकार की आत्मा तक के दर्शन हो जाते हैं।

## मजदूरी और प्रेम

परन्तु यन्त्रों की सहायता से बने हुए फोटो निर्जीव से प्रतीत होते हैं । उनमें और हाथ के चित्रों में उतना ही भेद है जितना कि बस्ती और शमशान में ।

हाथ की मेहनत से चीज में जो रस भर जाता है वह भला लोहे के द्वारा बनाई हुई चीज में कहाँ ! जिस आलू को मैं स्वयं बोता हूँ, मैं स्वयं पानी देता हूँ, जिसके हृद् गिर्द की घास-पात खोदकर मैं साफ करता हूँ, उस आलू में जो रस मुझे आता है वह टीन में बन्द किये हुए अचार मुँह में नहीं आता । मेरा विश्वास है कि जिस चीज में मनुष्य के प्यारे हाथ लगते हैं, उसमें उसके हृदय का प्रेम और मन की पवित्रता सूक्ष्म रूप से मिल जाती है और उसमें मुर्दे को जिन्दा करने की शक्ति आ जाती है । होटल में बने हुए भोजन यहाँ नीरस होते हैं, क्योंकि वहाँ मनुष्य मशीन बना दिया जाता है । परन्तु अपनी प्रियतमा के हाथ से बने हुए खूबे सूखे भोजन में कितना रस होता है । जिस मिट्टी के घड़े को कन्धों पर उठाकर, मीलों दूर से उसमें मेरी प्रेममग्न प्रियतमा ठण्डा जल भर लाती है, उस लाल घड़े का जल जब मैं पीता हूँ तब जल क्या पीता हूँ, अपनी प्रेयसी के प्रेमामृत को पान करता हूँ । जो ऐसा प्रेम-प्याला पीता हो उसके लिये शराब क्या वस्तु है ? प्रेम से जीवन सदा गद्गद रहता है । मैं अपनी प्रेयसी की ऐसी प्रेम-भरी, रस-भरी, दिल-भरी सेवा का बदला क्या कभी दे सकता हूँ ?

उधर प्रभात ने अपनी सुफेद किरणों से अँधेरी रात पर सुफेदी सी छिटकाई इधर मेरी प्रेयसी, मैना अथवा कोयल की तरह अपना बिस्तर से उठी । उसने गाय का बछड़ा खोला; दूध की धारा से अपना कटोरा भर लिया । गाते गाते अन्न को अपने हाथों से पीसकर सुफेद आटा बना लिया । इस सुफेद आटे से भरी हुई छोटी सी टोकरी सिर पर; एक हाथ में दूध से भरा हुआ लाल मिट्टी का कटोरा, दूसरे हाथ

में मक्खन की हाँड़ी। जब मेरी प्रिया घर की छत के नीचे इस तरह खड़ी होती है तब वह छत के ऊपर को श्वेत प्रभा से भी अधिक आनन्ददायक, बलदायक, बुद्धिदायक जान पड़ती है। उस समय वह उस प्रभा से अधिक रसीला, अधिक रँगीली, जीती जागती, चैतन्य और आनन्दमयी प्रातःकालीन शोभा सी लगती है। मेरी प्रिया अपने हाथ से चुनी हुई लकड़ियों को अपने दिल से चुराई हुई एक चिनगारी से लाल अग्नि में बदल देती है। जब वह आटे को छलनी से छानती है तब मुझे उसकी छलनी के नीचे एक अद्भुत ज्योति की लौ नजर आती है। जब वह उस अग्नि के ऊपर मेरे लिये रोटी बनाती है तब उसके चूल्हे के भीतर मुझे तो पूर्व दिशा की नमोलालिमा से भी अधिक आनन्ददायिनी लालिमा देख पड़ती है। यह रोटी नहीं, कोई अमूल्य पदार्थ है। मेरे गुरु ने इसी प्रेम से संयम करने का नाम योग रखा है। मेरा यही योग है।

आदमियों की तिजारत करना मुखों का काम है। सोने और लोहे के बदले मनुष्य को बेचना मना है। आजकल भाफ की कला का दाम तो हजारों रुपया है, परन्तु मनुष्य कौड़ी के मजदूरी और सौ सौ बिकत है। सोने और चाँदी की प्राप्ति से

कला जीवन का आनन्द नहीं मिल सकता। सच्चा आनन्द तो मुझे मेरे काम से मिलता है। मुझे अपना काम मिल जाय तो फिर स्वर्गप्राप्ति की इच्छा नहीं, मनुष्य-पूजा ही सच्ची ईश्वर पूजा है। मन्दिर और गिरजे में क्या रखा है? ईंट, पत्थर, चूना कुछ ही कहो—आज से हम अपने ईश्वर की तलाश मन्दिर, मसजिद, गिरजा और पोथी में न करेंगे। अब तो यही इरादा है कि मनुष्य की अनमोल आत्मा में ईश्वर के दर्शन करेंगे। यही आर्ट है—यही धर्म है। मनुष्य के हाथ ही से तां ईश्वर के दर्शन करानेवाले निकलते हैं। मनुष्य और मनुष्य की मजदूरी का तिरस्कार

## मजदूरी और प्रेम

करना नास्तिकता है। बिना काम, बिना मजदूरी, बिना हाथ के कला-कौशल के विचार और चिन्तन किस काम के ! सभी देशों के इतिहासों से सिद्ध है कि निकम्मे पादड़ियों, मौलवियों, पण्डितों और साधुओं का, दान के अन्न पर पला हुआ ईश्वर-चिन्तन, अन्न में पाप, आलस्य और भ्रष्टाचार में परिवर्तित हो जाता है। जिन देशों में हाथ और मुँह पर मजदूरी की धूल नहीं पड़ने पाती वे धर्म और कलाकौशल में कभी उन्नति नहीं कर सकते। पद्मासन निकम्मे सिद्ध हो चुके हैं। यही आसन ईश्वर-प्राप्ति करा सकते हैं जिनसे जोतने, बोने, काटने और मजदूरी का काम लिया जाता है। लकड़ी, ईंट और पत्थर को मूर्तिमान् करनेवाले, लुहार, बढ़ई, मेमार तथा किसान आदि वैसे ही पुरुष हैं जैसे कि कवि, महात्मा और योगी आदि। उत्तम से उत्तम और नीच से नीच काम, सबके सब प्रेमशरीर के अङ्ग हैं।

निकम्मे रहकर मनुष्यों की चिन्तन-शक्ति थक गई है। विस्तरों और आसनों पर सोते और बैठे बैठे मन के धोड़े हार गए हैं। सारा जीवन निचुड़ चुका है। स्वप्न पुराने हो चुके हैं। आजकल की कविता में नयापन नहीं। उसमें पुराने जमाने की कविता की पुनरावृत्ति मात्र है। इस नकल में असल की पवित्रता और कुंवारेपन का अभाव है। अब तो एक नये प्रकार का कला-कौशल-पूर्ण सङ्गीत साहित्य संसार में प्रचलित होनवाला है। यदि वह न प्रचलित हुआ तो मर्शानों के पहियों के नीचे दबकर हमें मरा समझिए। यह नया साहित्य मजदूरों के हृदय से निकलेगा। उन मजदूरों के कंठ से यह नई कविता निकलेगी जो अपना जीवन आनन्द के साथ खेत की मेड़ों का, कपड़े के तागों का, जूते के टॉकों का, लकड़ी की रंगों का, पत्थर कीन सों का भेदभाव दूर करेंगे। हाथ में कुल्हाड़ी, सिर पर टोकरी, नङ्गे सिर और नङ्गे पाँव, धूल से लिपटे और कीचड़ से रेंगे हुए ये बेजबान कवि जब जङ्गल में लकड़ी काटेगे तब लकड़ी काटने का शब्द इनके असभ्य स्वर से मिश्रित होकर

वायु-यान पर चढ़ दशों दिशाओं में ऐसा अद्भुत गान करेगा कि भविष्यत् के कलावन्तों के लिए वही ध्रुवपद और मलार का काम देगा। चरखा कातने वालों स्त्रियों के गीत ससार के सभी देशों के कौमी गीत होंगे। मजदूरों की मजदूरी ही यथार्थ पूजा होगी। कलारूपी धर्म की तभी वृद्धि होगी। तभी नये कवि पैदा होंगे; तभी नये औलियों का उद्भव होगा। परन्तु ये सब के सब मजदूरी के दूध से पलेंगे। धर्म, योग, शुद्धाचरण, सभ्यता और कविता आदि के फूल इन्हीं मजदूर-श्रमियों के उद्यान में प्रफुल्लित होंगे।

मजदूरी और फकीरी का महत्व थोड़ा नहीं। मजदूरी और फकीरी मनुष्य के विकास के लिये परमावश्यक हैं। बिना मजदूरी किये फकीरी का उच्च भाव शिथिल हो जाता मजदूरी और है; फकीरी भी अपने आसन से गिर जाती है; फकीरी बुद्धि बासी पड़ जाती है। बासी चीजे अच्छी नहीं होती। कितने ही, उम्र भर बासी बुद्धि और बासी फकीरी में मग्न रहते हैं; परन्तु इस तरह मग्न होना किस काम का? हवा चल रही है; जल बह रहा है; बादल बरस रहा है; पक्षी नहा रहे हैं; फूल खिल रहा है; घास नई, पेड़ नये, पत्ते नये—मनुष्य की बुद्धि और फकीरी ही बासी! ऐसा दृश्य तभी तक रहता है जब तक बिस्तर पर पड़े पड़े मनुष्य प्रभात का आलस्य-सुख मनाता है। बिस्तर से उठकर जरा बाग की सैर करो, फूलों की सुगन्ध लो, ठण्डी वायु में भ्रमण करो, वृक्षों के कोमल पल्लवों का नृत्य देखो तो पता लगे कि प्रभात-समय जागना बुद्धि और अन्तःकरण को तरो ताजा करना है, और बिस्तर पर पड़े रहना उन्हें बासी कर देना है। निकम्मे बैठे हुए चिन्तन करते रहना, अथवा बिना काम किये शुद्ध विचार का दावा करना, मानो सोते सोते खराटे मारना है। जब तक जीवन के अरण्य में पादङ्गी, मौलवी, पण्डित और साधु, सन्यासी हल, कुदाल

## मजदूरी और प्रेम

और खुरपा लेकर मजदूरी न करेगे तब तक उनका आलस्य जाने का नहीं, तब तक उनका मन और उनकी बुद्धि, अनन्त काल बीत जाने तक, मलिन मानसिक जुआ खेलती ही रहेगी। उनका चिन्तन बासी, उनका ध्यान बासी, उनकी पुस्तकें बासी, उनके लेख बासी, उनका विश्वास बासी और उनका खुदा भी बासी हो गया है। इसमें सन्देह नहीं कि इस साल के गुलाब के फूल भी वैसे ही हैं जैसे पिछले साल के थे। परन्तु इस साल वाले ताजे हैं। इनकी लाली नई है, इनकी सुगन्ध भी इन्हीं की अपनी है। जीवन के नियम नहीं पलटते; वे सदा एक ही से रहते हैं। परन्तु मजदूरी करने से मनुष्य को एक नया और ताजा खुदा नजर आने लगता है।

गेरुये वस्त्रों की पूजा क्यों करते हो ? गिरजे की घण्टी क्यों सुनते हो ? रविवार क्यों मनाते हो ? पाँच वक्त की नमाज क्यों पढ़ते हो ? त्रिकाल संध्या क्यों करते हो ? मजदूर के अनाथ नयन, अनाथ आत्मा और अनाश्रित जीवन की बोली सीखो। फिर देखोगे कि तुम्हारा यही साधारण जीवन ईश्वरीय भजन हो गया।

मजदूरी तो मनुष्य के समष्टि-रूप का व्यष्टि-रूप परिणाम है, आत्मारूपी धातु के गढ़े हुए सिकके का नकदी बयाना है, जो मनुष्यों की आत्माओं को खरीदने के वास्ते दिया जाता है। सच्ची मित्रता ही तो सेवा है। उससे मनुष्यों के हृदय पर सच्चा राज्य हो सकता है। जाति-पाँति, रूप-रङ्ग और नाम-धाम तथा बाप-दादे का नाम पूछे बिना ही अपने आपको किसी के हवाले कर देना प्रेम-धर्म का तत्त्व है। जिस समाज में इस तरह के प्रेम-धर्म का राज्य होता है उसका हर कोई हर किसी को बिना उसका नाम-धाम पूछे ही पहचानता है; क्योंकि पूछने-वाले का कुल और उसकी जात वहाँ वही होती है जो उसकी, जिससे कि वह मिलता है। वहाँ सब लोग एक ही माता-पिता से पैदा हुए भाई-बहन हैं। अपने-ही भाई-बहनों के माता-पिता का नाम पूछना क्या

पागलपन से कम समझा जा सकता है ? यह सारा संसार एक कुटुम्बवत् है । लँगड़े, लूले, अंधे और बहरे उसी मौरूसी घर की छत के नीचे रहते हैं जिसकी छत के नीचे बलवान्, नीरोग और रूपवान् कुटुम्ब रहते हैं । मूढ़ों और पशुओं का पालन-पोषण बुद्धिमान्, सबल और नीरोग ही तो करेंगे । आनन्द और प्रेम की राजधानी का सिंहासन सदा से प्रेम और मजदूरी के ही कन्धों पर रहता आया है । कामना सहित होकर भी मजदूरी निष्काम होती है; क्योंकि मजदूरी का बदला ही नहीं । निष्काम कर्म करने के लिये जो उपदेश दिये जाते हैं उनमें अभावशाल वस्तु सुभावपूर्ण मान ली जाती है । पृथ्वी अपने ही अन्न पर दिन रात घूमती है । यह पृथ्वी का स्वार्थ कहा जा सकता है परन्तु उसका यह घूमना सूर्य के इर्द गिर्द घूमना तो है और सूर्य के इर्द गिर्द घूमना सूर्य मंडल के साथ आकाश में एक सीधी लकीर पर चलना है । अन्त में, इसका गोल चक्कर खाना सदा ही सीधा चलना है । इसमें स्वार्थ का अभाव है । इसी तरह मनुष्य की विविध कामनायें उसके जीवन को मानों उसके स्वार्थरूपी धुरे पर चक्कर देती हैं । परन्तु उसका जीवन अपना तो है ही नहीं, वह तो किसी आध्यात्मिक सूर्य मण्डल के साथ की चाल है और अन्ततः यह चाल जीवन का परमार्थ-रूप है । स्वार्थ का यहाँ भी अभाव है, जब स्वार्थ कोई वस्तु ही नहीं तब निष्काम और कामनापूर्ण कर्म करना दोनों ही एक बात हुई । इसलिए मजदूरी और फकीरी का अन्योन्याश्रय सम्बन्ध है ।

मजदूरी करना जीवनयात्रा का आध्यात्मिक नियम है । जोन आर्व आर्क (Joan of Arc) की फकीरी और मेड़े चराना, टाल्सटाय का त्याग और जूते गाँठना, उमर खैयाम का प्रसन्नतापूर्वक तम्बू सीते फिरना, खलीफा उमर का अपने रङ्गमहलों में चटाई आदि बुनना, ब्रह्मज्ञानी कबीर और रैदास का शूद्र होना, गुरु नानक और भगवान् श्रीकृष्ण का मूक पशुओं को लाठी लेकर हाँकना—सर्च फकीरी का अनमोल भूषण है ।

## मजदूरी और प्रेम

एक दिन गुरु नानक यात्रा करते करते भाई लालो नाम के एक बड़ई के घर ठहरे । उस गाँव का भागो नामक रईस बड़ा मालदार था ।

उस दिन भागो के घर ब्रह्मभोज था । दूर दूर से समाज का साधु आये हुए थे । गुरु नानक का आगमन सुनकर पालन करने भागो ने उन्हें भी निमन्त्रण भेजा । गुरु ने भागो का वाली दूध की अन्न खाने से इनकार कर दिया । इस बात पर भागो धारा को बड़ा क्रोध आया । उसने गुरु नानक को बल-

पूर्वक पकड़ मँगाया और उनसे पूछा—आप मेरे यहाँ का अन्न क्यों नहीं ग्रहण करते ? गुरुदेव ने उत्तर दिया—भागो, अपने घर का हलवा पूरी ले आओ तो हम इसका कारण बतला दें । वह हलवा-पूरी लाया तो गुरु नानक ने लालो के घर से भी उसके मोटे अन्न की रोटी मँगवाई । भागो की हलवा-पूरी उन्होंने एक हाथ में और भाई लालो की मोटी रोटी दूसरे हाथ में लेकर दोनों को जो दबाया तो एक से लोहू टपका और दूसरी से दूध की धारा निकली । बाबा नानक का यही उपदेश हुआ । जो धारा भाई लालो की मोटी रोटी से निकली थी वही समाज का पालन करनेवाली दूध की धारा है यही धारा शिवजी की जटा से और यही धारा मजदूरो की उँगलियों से निकलती है ।

मजदूरी करने से हृदय पवित्र होता है; मङ्गल्य दिव्य लोकान्तर में विचरते हैं । हाथ की मजदूरी ही से सच्चे ऐश्वर्य की उन्नति होती है । जापान में मैंने कन्याओं और स्त्रियों को ऐसी कलावती देखा है कि वे रेशम के छोटे छोटे टुकड़ों को अपनी दस्तकारी की बदौलत हजारों की कीमत का बना देती हैं, नाना प्रकार के प्राकृतिक पदार्थों और दृश्यों को अपनी सुई से कपड़े के ऊपर अङ्कित कर देती हैं । जापान-निवासी कागज, लकड़ी और पत्थर की बड़ी अच्छी मूर्तियाँ बनाते हैं । करोड़ों रुपये के हाथ के बने हुए जापानी खिलौने विदेशों

में विकते हैं। हाथ की बनी हुई जापानी चीजें मशीन से बनी हुई चीजों को मात करती हैं। संसार के सब बाजारों में उनकी बड़ी माँग रहती है। पश्चिमी देशों के लोग हाथ की बनी हुई जापान की अद्भुत वस्तुओं पर जान देते हैं। एक जापानी तत्त्वज्ञानी का कथन है कि हमारी दस करोड़ उँगलियाँ सारे काम करती हैं इन उँगलियों ही के बल से, सम्भव है हम जगत् को जीत लें। ("We shall beat the world with the tips of our fingers") जब तक धन और ऐश्वर्य की जन्मदात्री हाथ की कारीगरी की उन्नति नहीं होती तब तक भारतवर्ष ही की क्या, किसी भी देश या जाति की दृग्गति दूर नहीं हो सकती। यदि भारत की तीस करोड़ नर-नारियों की उँगलियाँ मिलकर कारीगरी के काम करने लगे तो उनकी मजदूरी की बदौलत कुबेर का महल उनके चरणों में आप ही आप आ गिरे।

अन्न पैदा करना, तथा हाथ की कारीगरी और मिहनत से जड़ पदार्थों को चैतन्य-चिह्न से सुसज्जित करना, सूक्ष्म पदार्थों को अमूल्य पदार्थों में बदल देना इत्यादि कौशल ब्रह्मरूप होकर धन और ऐश्वर्य को सृष्टि करते हैं। कविता, फकीरी और साधुता के ये दिव्य कला-कौशल जीते-जागते और हिलते डुलते प्रतिरूप हैं। इनकी कृपा से मनुष्य-जाति का कल्याण होता है। ये उस देश में कभी निवास नहीं करते जहाँ मजदूर और मजदूर की मजदूरी का सत्कार नहीं होता; जहाँ शूद्र की पूजा नहीं होती। हाथ से काम करनेवालों से प्रेम रखने और उनकी आत्मा का सत्कार करने से साधारण मजदूरी सुन्दरता का अनुभव करानेवाले कला-कौशल, अर्थात् कारीगरी, का रूप हो जाती है। इस देश में जब मजदूरी का आदर होता था तब इसी आकाश के नीचे बैठे हुए मजदूरों के हाथों ने भगवान् बुद्ध के निर्वाण-सुख को पत्थर पर इस तरह जड़ा था कि इतना काल बीत जाने पर, पत्थर की मूर्ति के ही दर्शन से ऐसी शान्ति प्राप्त होती है जैसी कि स्वयं

## मजदूरी और प्रेम

भगवान् बुद्ध के दर्शन से होती है। मुँह, हाथ, पाँव इत्यादि का गढ़ देना साधारण मजदूरी है, परन्तु मन के गुप्त भावों और अन्तःकरण की कोमलता तथा जीवन की सभ्यता को प्रत्यक्ष प्रकट कर देना प्रेम-मजदूरी है। शिवजी के ताण्डव-नृत्य को और पार्वतीजी के मुख की शोभा को पत्थरों की सहायता से वर्णन करना जड़ को चैतन्य बना देना है। इस देश में कारीगरी का बहुत दिनों से अभाव है। महमूद ने जो सोमनाथ के मन्दिर में प्रतिष्ठित मूर्तियाँ तोड़ी थीं उससे उसकी कुछ भी वीरता सिद्ध नहीं होती। उन मूर्तियों को तोहर कोई तोड़ सकता था। उसकी वीरता की प्रशंसा तब होती जब वह यूनान की प्रेम-मजदूरी, अर्थात् वहाँवालों के हाथ की अद्वितीय कारीगरी प्रकट करने वाली मूर्तियाँ तोड़ने का साहस कर सकता। वहाँ की मूर्तियाँ तो बोल रही हैं—वे जीती जागती है, मुर्दा नहीं। इस समय के देवस्थानों में स्थापित मूर्तियाँ देखकर अपने देश की आध्यात्मिक दुर्दशा पर लज्जा आती है। उनसे तो यदि अनगढ़ पत्थर रख दिए जाते तो अधिक शोभा पाते। जब हमारे यहाँ के मजदूर, चित्रकार तथा लकड़ी और पत्थर पर काम करने वाले भूखों मरते हैं तब हमारे मन्दिरों की मूर्तियाँ कैसे सुन्दर हो सकती हैं? ऐसे कारीगर तो यहाँ शूद्र के नाम से पुकारे जाते हैं। याद रखिए, बिना शूद्र-पूजा के मूर्ति-पूजा किंवा कृष्ण और शालिग्राम की पूजा होना असम्भव है। सच तो यह है कि हमारे सारे धर्म-कर्म वासी ब्राह्मणत्व के छिछोरेपन से दरिद्रता को प्राप्त हो रहे हैं। यही कारण है जो आज हम जातीय दरिद्रता से पीड़ित हैं।

पश्चिमी सभ्यता मुख मोड़ रही है। वह एक नया आदर्श देख रही है। अब उसकी चाल बदलने लगी है। वह कलों की पूजा को छोड़कर मनुष्यों की पूजा को अपना आदर्श बना रही है। इस आदर्श के दर्शानेवाले देवता रास्कन और टाल्सटाय आदि हैं। पश्चात्य देशों

में नयाप्रभात होने वाला है । वहाँ के गम्भीर विचारवाले लोग इस प्रभात का स्वागत करने के लिये उठ खड़े हुए पश्चिमी सभ्यता हैं । प्रभात होने के पूर्व ही उसका अनुभव कर का एक नया लेनेवाले पक्षियों की तरह इन महात्माओं को इस आदर्श नये प्रभात का पूर्व ज्ञान हुआ है । और, हो क्यों न ? इंजनों के पहिये के नीचे दबकर वहाँ वालों के भाई बहन—नहीं नहीं, उनकी सारी जाति पिस गई; उनके जीवन के धुरे टूट गये, उनका समस्त धन घरों से निकलकर एक ही दो स्थानों में एकत्र हो गया । साधारण लोग मर रहे हैं, मजदूरों के हाथ-पाँव फट रहे हैं, लहू चल रहा है ! सरदा से ठिठुर रहे हैं । एक तरफ दरिद्रता का अखण्ड राज्य है, दूसरी तरफ अमीरी का चरम दृश्य । परन्तु अमीरी भी मानसिक दुःखों से विमर्दित है । मशीनें बनाई तो गई थीं मनुष्यों का पेट भरने के लिये—मजदूरों को सुख देने के लिए—परन्तु वे काली काली मशीनें ही काली बनकर उन्हीं मनुष्यों का भक्षण कर जाने के लिए सुख खोल रही हैं । प्रभात होने पर ये काली काली बलाये दूर होंगी । मनुष्य के सौभाग्य का सूर्योदय होगा ।

शोक का विषय है कि हमारे और अन्य पूर्वी देशों में लोगों को मजदूरी से तो लेशमात्र भी प्रेम नहीं, पर वे तैयारी कर रहे हैं पूर्वोक्त काली मशीनों का आलिङ्गन करने की । पश्चिमवालों के तो ये गले पड़ी हुई बहती नदी की काली कमली हो रही हैं । वे छोड़ना चाहते हैं, परन्तु काली कमली उन्हें नहीं छोड़ती । देखेंगे, पूर्ववाले इस कमली को छाती से लगाकर कितना आनन्द अनुभव करते हैं । यदि हममें से हर आदमी अपनी दस उँगलियों की सहायता से साहसपूर्वक अच्छी तरह काम करे तो हमें मशीनों की कृपा से बड़े हुए परिश्रमवालों को, वाणिज्य के जातीय संग्राम में सहज ही पछाड़ सकते हैं । सूर्य तो

## मजदूरी और प्रेम

सदा पूर्व ही से पश्चिम को आर जाता है। पर आओ पश्चिम में आने वाली सभ्यता के नये प्रभात को हम पूर्व से भेजें।

इंजना की वह मजदूरी किस काम की जो बच्चा, स्त्रियों और कारीगरों को ही भूखा नज़्मा रखती है, और केवल सोने, चाँदी, लोहे आदि धातुओं का ही पालन करती है। पश्चिम को विदित हो चुका है कि इनसे मनुष्य का दुःख दिन पर दिन बढ़ता है। भारतवर्ष जैसे दरिद्र देश में मनुष्य के हाथों की मजदूरी के बदले कलों से काम लेना काल का डङ्का बजाना होगा। दरिद्र प्रजा और भी दरिद्र होकर मर जायगी। चेतन से चेतन की वृद्धि होती है। मनुष्य को तो मनुष्य ही सुख दे सकता है। परस्पर की निष्कपट सेवा ही से मनुष्य जाति का कल्याण हो सकता है। धन एकत्र करना तो मनुष्य जाति के आनन्द-मङ्गल का एक साधारण सा और महा तुच्छ उपाय है। धन की पूजा करना नास्तिकता है; ईश्वर को भूल जाना है; अपने भाई-बहनों तथा मानसिक सुख और कल्याण के देनेवालों को मारकर अपने सुख के लिये शारीरिक राज्य की इच्छा करना है; जिस डाल पर बैठे हैं उसी डाल को स्वयं ही कुल्हाड़ी से काटना है। अपने प्रिय जनों से रहित राज्य किस काम का ? प्यारी मनुष्य-जाति का सुख ही जगत् के मङ्गल का मूल साधन है। बिना उसके सुख के अन्य सारे उपाय निष्फल हैं। धन की पूजा से ऐश्वर्य, तेज, बल और पराक्रम नहीं प्राप्त होने का। चैतन्य आत्मा की पूजा से ही ये पदार्थ प्राप्त होते हैं। चैतन्य-पूजा ही से मनुष्य का कल्याण हो सकता है। समाज का पालन करनेवाली दूध की धारा जब मनुष्य के प्रेममय हृदय, निष्कपट मन और मित्रतापूर्ण नेत्रों से निकलकर बहती है तब वही जगत् में सुख के खेतों को हरा-भरा और प्रफुल्लित करती है और वही उनमें फल भी लगाती है। आओ, यदि हो सके तो, टोकरी उठाकर कुदाली हाथ में ले, मिट्टी खोदें और अपने हाथ से उसके

मजदूरी और प्रेम

प्याले बनावे । फिर एक एक प्याला घर घर में, कुटिया कुटिया में रख आवे और सब लोग उसी में मजदूरी का प्रेमामृत पान करें ।

है रीत आशकों की तन मन निसार करना ।  
रोना सितम उठाना और उनको प्यार करना ॥

— — —

## अमेरिका का मस्त जोगी वाल्ट ह्विटमैन—

( Walt Whitman )

अमेरिका के लम्बे लम्बे हरे देवदारों के घने वन में वह कौन फिर रहा है ? कभी यहाँ टहलता हूँ कभी वहाँ गाता हूँ ।

एक लम्बा, ऊँचा, वृद्ध-युवक, मिट्टी-गारे से लिप्त, मोटे वस्त्र का पतलून और कोट पहने, नङ्गे सिर, नङ्गे पाँव और नङ्गे ही दिल अपनी तिनकों की टोपी मस्ती में उछालता, भ्रूमता जा रहा है । मौज आती हैं तो घास पर लेट जाता है । कभी नाचता, कभी चीखता और कभी भागता है । मार्ग में पशुओं को हरे तृण का भोज उड़ाते देख आनन्द में मग्न हो जाता है । आकाश-गामी पक्षियों के उड़ान को देख हर्ष में प्रफुल्लित हो जाता है । जब कभी उसे परोपकार की स्रुति है तब वह गोल गोल श्वेत शिवशङ्करों को उठा उठा कर नदी की तरङ्गों पर बरसाता है । आज इस वृद्ध के नीचे विश्राम करता है, कल उसके नीचे बैठता है । जीवन के आराम में वह धूप और छाँह की तरह बिचरता चला जाता है । कभी चलते-चलते अकस्मात् ठहर जाता है, मानो कोई बात याद आ गई । बार बार गर्दन फेर-फेर और नेत्र उठा उठा कर वह सूर्य को ताकता है । सूर्य की सुनहली सोहनी रोशनी पर वह मरता है । समीर की मन्द मन्द गति के साथ वह नृत्य करता है, मानो सहस्रों वीणायें और सितार उसको पवन के

## अमेरिका का मस्त जोगी वाल्ट व्हिटमैन

प्रवाह में सुनाई देते हैं। इस प्राकृतिक राग की आँधी के सामने मानुषिक राग, दिनकर के प्रकाश में टिमटिमाती हुई दीप-शिखा के समान तेजोहीन प्रतीत होते हैं। उसके भीतर बाहर कुछ ऐसी असाधारण मधुरता भरी है कि चञ्चरीक के समूह के समूह उसके साथ साथ लगे फिरते हैं। उसके हृदय का सहस्र दल ब्रह्म-कमल ऐसा खिला है कि सूर्य और चन्द्र भ्रमरवत् उस विकसित कमल के मधु का स्वाद लेने को जाते हैं। बारी बारी से वे उसमें मस्त होकर बन्द होते हैं और प्रकाश पाकर पुनः बाहर आते हैं।

उस सुन्दर धवल केशधारी वृद्ध के वेश में कहीं\* न्यागरा की दूध धारा तो नहीं फिर रही है? यह मस्त वनदेव कौन है। चलता इस लटक से है मानो यही इस वन का राजा या गन्धर्व है। पत्ता पत्ता, कली कली, नली नली, डाली डाली, तने तने को यह ऐसी रहस्यपूर्ण दृष्टि से देखता है मानो सब इसी के दिलदार और यार हैं। सामने से वे दो कृषक-महिलाये दूध की ठिलियाँ उठाये गाती हुई आती हैं। क्या ही अलौकिक दृश्य है। औरों को तो ये दो अबलाये अस्थि और मांस की पुतलियाँ ही प्रतीत होती हैं, परन्तु हमारे मस्तराम की आश्चर्यभरी आँखों को वे केवल बाँस की पोरियाँ ही दीखती हैं। उसकी निगूढ़ दृष्टि उनसे लड़ी। वे दोनों इस वृद्ध-युवक को आवारा समझ कुछ खफा हुईं, कुछ शरमाईं और कुछ मुसकराईं। उसने उनके मतलब को जान लिया। वह हँसा, खिलखिलाया और सलाम किया। नयनों से कुछ इशारे किये; आँसू बहाये। किसी की प्रशंसा की, कोई याद आया, किसी से हाथ मिलाया और उसे दिल दे दिया। यह दृश्य हमारे मस्त कवि का एक काव्य हुआ।

वे दो खोखले वृद्ध, वेश बदल कर और वृद्ध स्त्रियों का रूप

---

\*सर्वोत्तम सौन्दर्य-पूर्ण दृश्यवाला अमेरिका का एक करना।

## अमेरिका का मस्त जोगी वाल्ट हिटमैन

बनाकर, सामने नजर आये। वे दोनों वृद्धायें हाथ में हाथ मिलाये कुछ अलापती जा रही हैं। उसने जिन दो पूर्व युवतियों, हुस्न की परियों, विकसित कलियों, को देखकर अपना काव्य-प्रवाह बहाया था उसी पवित्र काव्य-गङ्गा को वृद्धों के चरणों में भी छोड़ दिया। वह सौन्दर्य का कितना बड़ा पुजारी है। वह हर वस्तु में सुन्दरता ही सुन्दरता देखता है। क्यों नहीं, तत्त्ववित् है न। उसके अनुभव में आया है कि उसका एकमात्र प्यारी नाना रूपों में प्रत्यक्ष हुई है। प्रत्येक वस्तु सुन्दर है—क्या बॉस की लम्बी लम्बी पोरियाँ और क्या वट के खोखले तने। या तो संसार की दृष्टि ही अपूर्ण है, या मेरी ही दृष्टि मदमाती है। उनमें अन्तर अवश्य है। जो आँख हर आँख में अपने ही प्यारे का देवती है वह भला तुम्हारी कला के पैमानों के कारागार में कैसे बन्द हो सकती है। बस सौन्दर्य का सच्चा पुजारी यही है। यह सब को सदा यही सुनाता है—“तुम भले, तुम भले”।

अमेरिका के वन में नहीं, जीवन के आरम्भ में यह कौन जा रहा है ? यह प्रकृति का बंभोला कौन ? यह वन का शाहदौला है कौन ? यह इतना शरीफ अमीर होकर ऐसा रिन्द फकीर है कौन ? अमेरिका वही मूर्ख, तत्त्वहीन, मशीन-रूपी नरक में यह जीता जागता ब्रह्म ज्ञान रूपी स्वर्ग कौन है ? इसकी उपस्थिति मात्र से मनुष्य की आभ्यन्तरिक अवस्था बदल जाती है। अमेरिका की बहिर्मुख सभ्यता को लात मार कर, बिरादरी और बादशाह से बागी होकर, कालीनों को जला कर, महलों में आग लगा कर यह कौन जाड़ा मना रहा है ? प्रभात की फेरी वाला, जङ्गल का जोगी, अमेरिका का स्वतंत्र और मस्त फकीर वाल्ट हिटमैन अपनी काव्यरचना करता हुआ जा रहा है।

वह कोमल और ऊँच, लम्बे और गहरे, स्वरा में एक सँदेशा देता जा रहा है। सभ्यता के नगरों से यह जोगी जितनी ही दूर होता जाता है उसका स्वर उतना ही गम्भीर होता जाता है।

## अमेरिका का मस्त जोगी वाल्ट हिटमैन

वास्तव में मनुष्य स्वतन्त्रताप्रिय है। किसी प्रकार के दासपन को वह नहीं सह सकता आजकल अमेरिका में लॉग अमीरी से तज्ञ आ गये हैं। उनकी हँसी एक प्रकार की मिस्सी है। जो किसी को मुख दिखाना हुआ झट मल ली। वहाँ घर और वस्त्रों को कफन और कब्र बनाकर मनुष्य-जीवन का प्रवाह दबाया जाता है। चमकता हुआ कलदार ही उस वाद्य जीवन को स्थिर रखने का वहाँ खुदा है। जैसे भारतवासी फोटो उतरवाते समय ओठों और मूँछों के कोण और कोटों के किनारे सँभालते हैं उसी तरह आधुनिक कलदार-सभ्यता (Doller-Civilisation) में जीते जागते मनुष्यों को सुन्दर फोटो रूप बनकर अपना जीवन व्यतीत करना पड़ता है। उनके आचरण हृदय-प्रेम की ताल में तुले नहीं होते, वे कृत्रिम होते हैं। वहाँ काव्य के नृसिंह भगवान् हिटमैन ने अपने उच्चनाद से हिन्दुओं की ब्रह्मविद्या और ईरान की सूफी विद्या को एक ही साथ घोषित किया है। वाल्ट हिटमैन के मत में वह मनुष्य ही क्या जो ब्रह्म-निष्ठ नहीं। वह एक मनुष्य के जीवन में मनुष्यमात्र का जीवन और मनुष्य मात्र के जीवन में एक मनुष्य का जीवन देखता है। उसके काव्य का प्रवाह आकाशवत् सार्वभौम है। जैसे आकाश समस्त नक्षत्र आदि को उठाये हुए है उसी तरह उसका काव्य सब चर और अचर, नर और नारी को चमकते दमकते तारों की तरह, अपने में लपेटे हुए है। वह सब के मन की कहता है और सब उसको अपने मन की बात बताते हैं। गरीबों को अमीर और अमीरों को गरीब करने वाला कवि यही है। अपने आनन्द की मस्ती में उसे काव्य की तुकबन्दी भी बन्धन प्रतीत होती है। वह प्रत्येक दोहे-चौपाई को पिङ्गल के नियम की तराजू में नहीं, किन्तु अपने हृदयानन्द के ताल में तौलता है। जो लोग मिश्र के पिरिमिड को उत्तम कला कौशल का नमूना मानते हैं

## अमेरिका का मस्त जोगी वाल्ट हिटमैन

उनकी सुन्दरता देखने की दृष्टि परदानशीनों की सी है। प्रकृति के वाह्य अनियमित दृश्य इन परदानशीनों के नियमित दृश्यों से कहीं बढ़ चढ़कर हैं। जो भेद समुद्र की छाती के उभार के प्रेमियों और एक युवती के वक्षस्थल के उभार के प्रेमियों में है, वही भेद हिटमैन के सद्यः स्वतन्त्र काव्य प्रेमियों और तुकबन्दी के प्रेमियों में है। बाग बनाना तो मानुषी कला है, और जङ्गल बनाना दिव्य कला है। चित्र बनाना तो जीतों को मुर्दा बनाना है और मुर्दा प्रकृति को जीवित संसार बना देना ब्रह्मकला है। और कवि तो केवल चित्र बनाते हैं, परन्तु यह कवि जीते जागते प्राणियों को अपने काव्य में भरता है। नीचे हम वाल्ट हिटमैन की पोयम्स आव् जाय (Poems of Joy) नामक कविता के कुछ खण्डों का तरजुमा, नमूने के तौर पर देते हैं :—

### आनन्द-काव्य

ओ: कैसे रचूँ आनन्द भरी; रसभरी, दिल भरी कविता—

राग भरी; पुँस्त्व भरी, स्त्रीत्व भरी. बालकत्व भरी,  
संसार भरी, अन्न भरी, फल भरी, पुष्प भरी ॥ १ ॥

ओ: ! पशुओं की ध्वनि लाऊँ, मछलियों की फुर्ती,  
और उनके तुल्य हुए तैरते शरीरों को लाऊँ।

चारों ओर हो विशाल समुद्र का जल, खुले समुद्र पर  
हों खुले बादल, और चले हमारी नैया ॥ २ ॥

ओ: ! आत्मानन्द का दरिया टूटा, पिंजड़े टूटे,

दीवारें टूटी, घर बह गये और शहर बह गये।

उस एक छोटी पृथ्वी से क्या होता है ? लाओ, दे दो सब  
नक्षत्र मुझे, सब सूर्य मुझे, और सब काल मुझे ॥ ३ ॥

.....

ओ: ! इस अनादि भौतिक पीड़ा को इस प्रेम

## अमेरिका का मस्त जोगी वाल्ट हिटमैन

दर्द को — दरसाऊँ कैसे अपनी कविता में ।

कैसे बहाऊँ उस आत्मगङ्गा के नीर को;

कैसे बहाऊँ प्रेमाश्रुओं को अपनी कविता में ॥ ४ ॥

जो पृथ्वी है सो हम हैं; जो तारे हैं सो हम हैं; ओः हो ! कितनी  
देर हमने उल्लुओं के स्वर्ग में काट दी ।

हम शिला हैं, पृथ्वी में धँसे हैं; हम खुले मैदान हैं, साथ साथ  
पड़े हैं; हम हैं दो समुद्र. जो आन मिले हैं ।

पुरुष का शरीर पवित्र है, स्त्री का शरीर पवित्र है, फूलों का शरीर  
पवित्र है, वायु का शरीर पवित्र है, जल पवित्र है, धरती पवित्र है,  
आकाश पवित्र है, गोबर और तृण की भोपड़ी पवित्र है, सेवा पवित्र  
है, अर्पण पवित्र है । लो सब अपने आपको तुम्हारे हवाले करता हूँ ।  
कोई भी हो तुम सारी दुनिया के सामने मेरे ही रहो ।

---

## पवित्रता—

अनेक सूर्य आकाश के महामण्डल में घूम रहे हैं, अनन्त ज्योति  
इधर उधर और हर जगह बिखेर रहे हैं । सफेद सूर्य, पीले सूर्य,  
नीले सूर्य और लाल सूर्य, किसी के प्रेम में अपने  
ब्रह्मकांति अपने घरों में दीपमाला कर रहे हैं । समस्त संसार  
का रोम रोम अग्नियों की अग्नि से प्रज्वलित हो रहा  
है । परमाणु ब्रह्मकांति से मनोहर रूपों में सजे हुए, ज्योति से लदे  
हुए, जगमग कर रहे हैं । परमाणु सूर्य-रूप हो रहे हैं और सूर्य परमाणु-  
रूप है । सुंदरता सारी लज्जा को त्याग, घर-बार छोड़, अनन्त पदों  
को फाड़ खुले मुँह दर्शन दे रही है । बालकों, नारियों और पुरुषों के  
मुखों को लाली और सफेदी ऋढ़ रही है । गुलाब, सेब और अंगूर के  
नरम नरम और लाल लाल कपोलों से फूट फूट कर निकल रही है ।  
प्रातःकाल के रूप में सिर पर नरम नरम और सफेद सफेद रुई की  
टोकरा उठाए हुए किस अन्दाज से वह आ रही है । सायंकाल होते  
अपने डुपट्टे के सुख फूलों से फिर कुल संसार से होली खेलती हुई  
वह जा रही है । झरनों, चश्मों और नदी-नालों में नाच रही है ।  
हिमालय की बर्फों में लोट रही है । सजे धजे जंगल और रुखे  
सूखे बियाबानों की सनमनाहट में लोट रही है । युवती कन्या के रूप  
में जवानी की सुगन्धि फैलाती हुई वही चल रही है । नरगिस (एक  
फूल) का आँख में किस भेद से छिपी हुई है कि प्रत्यक्ष दर्शन हो रहे

हैं। बालक की बोलचाल में, चेहरे में, क्या झाँक झाँक कर सबको देख रही है। खुला दरबार है। ज्योति का आनन्द नृत्य सब दिशाओं में हो रहा है। मीठी वायु दर्शनानन्द से चूर हो मारे खुशी के लोटती-पोटती, लड़खड़ाती, नाचती चली जा रही है। इस ब्रह्मकांति के जोश में बादल गरज रहे हैं। बिजली चमक रही है। अहाहा ! सारा ससार कृतार्थ हुआ। जाग उठा। हाथी चिघाड़ रहे हैं, दौड़ रहे हैं। शेर गरज रहे हैं, कूद रहे हैं। मृग फलॉग मार रहे हैं। कोयल और पपीहे, बटेर, बए (बया), कुमारी और चंझूल नंगे हो नहा रहे हैं। दर्शन दीदार का पा रहे हैं। तीतर गा रहे हैं। मुर्ग अपनी छाती में आनन्द को पूरा भरकर कूक रहे हैं। ई, ई, ऊ, ऊ, कू, कू, हू, हू में वेद-ध्वनि, ओम् का आलाप हो रहा है। पर्वत भी मारे आनन्द के हवा में उछल उछल नीले आकाश को फाँद रहे हैं। बदरीनाथ, केदारनाथ जमनोत्तरी, गङ्गोत्तरी, कंचनजंगा की चोटियाँ हँस रही हैं। वृक्ष उठ खड़े हुए हैं, इन सब की संध्या हो चुकी है !

था जिनकी खातिर नाच किया जब मूरत उनकी आएगी।

कहीं आप गया कहीं नाच गया और तान कहीं लहराएगी ॥

अर्थात् सबकी नमाज कजा हो गई। प्यारा नजर आया। सबकी ईद है। ब्रह्मर्षि 'सर्व' खल्विदं ब्रह्म' पुकार उठा, चीख उठा, योगनिद्रा खुल गई। ब्रह्मकांति के आकर्षण ने दसवों द्वार फोड़कर प्राणों को अपनी ही गति फिर दे दी। मारे परमानन्द के हृदय बह गया, यहाँ गिर गया, वहाँ गिर गया। अत्यन्त ज्योति के चमत्कार से साधारण आँखें फूट गईं। प्रेम के तूफान ने सिर उड़ा दिया। हवनकुंड से स्याह, नीले रङ्ग का ब्रह्म, कमलों से जड़ा हुआ ब्रह्म, मोतियों से सजा हुआ किसी ने कन्धों पर रख दिया, ब्रह्मयज्ञ हो चुका। मनुष्य-जन्म सफल हुआ। जय ! जय !! जय !!! भक्त की जिह्वा बन्द हो गई। बाहु पसार जा मिला। कुछ न बोल सका। कुछ न बोला, ब्रह्म-कान्ति में लीन है

गया। उसके सितार के तार टूट गए। नारद की वीणा चुप हो गई। कृष्ण की बाँसुरी थम गई! ध्रुव का शंख गिर पड़ा शिव का डमरू बन्द हो गया! महात्मा पंडित जी जा रहे हैं। पुस्तकों से लदा छकड़ा साथ जा रहा है। परन्तु पंडितजी इन अमूल्य पुस्तकों को, छकड़े समेत, अपने सिर पर उठाए हुए हैं। वह क्या हुआ? क्या नजर आया? अमूल्य पुस्तकें—वेद, दर्शन इत्यादि पंडितजी के सिर से गिर पड़ी? छकड़ा लड़खड़ाता गङ्गा में बह गया। सब कुछ जल में प्रवाह कर दिया। पंडितजी का साधारण शरीर वायु में मानो धुल गया। नाचने लग गए। चाँद के साथ, सूर्य के साथ हाथ पकड़े। नृत्य करते हुए वायु समान समुद्र की लहरों में ब्रह्मकांति के साथ जा मिले।

हल चलाता किसान रह गया। बकरी भैस चराता चराता—वह और कोई भी उर्सा तरह लीन हुआ। जूते गाँठता गाँठता एक और कोई दे मरा। भोग-विलास की चीजे पास पड़ी हैं। ऊँचे महलों से निकल, सुनहरे पलंगों से गिर वह रेत में कौन लोट गया! सिर से ताज उतार नंगे सिर नंगे पाँव यह अलख कौन जगाता फिरता है? मोर-मुकुट उतार सिर पर काँटे धरे शूली की नंगी धार पर वह मीठी नींद कौन सा राम का लाड़ला सोता है? तारों की तरह कभी मैं टूटा और कभी तू टूटा! कभी इसकी बारी और कभी उसकी बारी आई। मीराबाई ब्रह्मकांति का अमूल्य चिह्न हो गई। गार्गी ने ब्रह्मकांति की लाट को अपनी आँख में धारण किया। वेद ने ब्रह्मकांति के दर्शनरूप को अपनी आँख में ले लिया।

हाय! ब्रह्मकांति के अनंत प्रकाश में भी मेरे लिये अँधेरा हुआ! अत्यंत अत्याचार है—गंगाजल तो हो शीतल, परन्तु मेरा मन अपवित्रता के भावों से भरा हुआ मार्गशीर्ष और पौष की ठंडी रातों में भी अपने काले काले संकल्प के नागों से डसा हुआ जल रहा हो, तड़प रहा हो! अपवित्रता का पर्दा जब आँख पर आ जाय तो भला

किस तरह देखे कोई ? हिमालय की बर्फ हो शुद्ध सफेद और मेरा मन काला ! हरी हरी घास भी हो नरम और मेरा दिल हो कठोर ! पत्थर, रेत, कुश, जल ये भी हों पवित्र, पर इन जैसी भी न हो मेरी स्थिति ! फूल भी हों सुगंधित, मिट्टी भी हो सुगंधित, पर मेरे नेत्र और वाणी और अन्य अंग हों दुर्गंधित ? पत्थरों के पहाड़, घासों के जंगल, पानी के झरनों को देखकर तो महर्षि भी बाल उठे “सर्व खल्विदं ब्रह्म” पर मुझे देख उनका भी कर्मा कभी शक हो जाय और प्रश्न उनके हृदय में भी उठे कि ब्रह्म को कैसे भूल गया ?

ऐसे कैसे निभेगी—हाय मुझमें यह अपवित्रता कहाँ से आ गई ! क्यों आ गई ? ब्रह्म का भी कलकित कर रही है । ब्रह्मकांति की अटल शोभा को भी एक जरा से बादल ने ढाँप दिया । एक मोतियाबिंद के दाने ने गुप्त कर दिया । अपवित्रता को आँखों में रख कैसे हो सकता है वह विद्यादर्शन ? कैसे सफल हो मनुष्यजन्म ? राजदुलारे ! अहो क्या हुआ कि सारी की सारी सलतनत छूट गई, दर दर गलीगली धक्के खाता हूँ; कोई लात मारता है, कोई डेला, कभी यहाँ चोट लगती है, कभी वहाँ, कभी इस रोग ने मारा, कभी उस रोग ने मारा; सारा दिन और सारी रात रोग के पलँग पर भी पड़ा रहना क्या जीवन हुआ ! मरने से पहले ही हजार बार मौत के डर से मरते रहना भी क्या जीवन है ? सदा आशा तृष्णा के जाल में फड़क फड़क न जाना और न मरना, भला क्या सुख हुआ ?

कौन सा कलियुग मेरे मन में भूत की तरह आ समाया है कि मुझे सब कुछ भुला दिया । खुश हो होकर जुआ खेलने लग गया । अपनी आत्मा को भी हार बैठा । अपनी आँखे आप ही फोड़ अब रोते हो क्यों ? अब तो तुम्हारी प्रार्थना सुननेवाला कोई नहीं । इस अपवित्रता के अंधेरे को जैसे तैसे सफेद करना है । इस कलंक को धोना है । इस मोतियाबिंद को निकलवाना है । मैं भारतनिवासी कैसे हो सकता

## पवित्रता

हूँ, जिसने अपने तीर्थों में भी, जिन तीर्थों की यात्रा से मुनते हैं अपवित्रता का कलक दूर हो जाता था, काले संकल्पों के नाग हर किसी को डसने के लिये छोड़ रखे हैं और हमें लीला मानकर रोंते समान हँस रहा हूँ।

ये तिमिर के बादल कब उड़ेंगे ? पवित्रता का सूर्य मेरे अंदर कब उदय होगा ! मेरे कान में धीमी सी आवाज आई कि भारत उदय हुआ। हाय भारत का कब उदय हुआ ! जब मेरे दिल में अभी अपवित्रता की रात है, जब अभी मैंने हिमालय, गंगा, विंध्याचल, सतपुड़ा और गोवर्द्धन को अपनी आँख के अँधेरे से ढाँप रक्खा है। भारत तो सदा ही ब्रह्मकांति में वास करता है, भारत तो ब्रह्मकांति का एक चमकता दमकता सूर्य है। जब ब्रह्मकांति के दर्शन न हुए तो भारत का कहाँ पता चलता है। भारत की महिमा पवित्रता के आदर्श में है। ब्रह्मचारी पवित्र, गृहस्थ पवित्र, वानप्रस्थ पवित्र, सन्यासी पवित्र; ब्रह्मकांति को देखना और दिखाना भारत का जीवन है। पवित्रता का देश, भारतनिवासियों का देश है, जहाँ ब्रह्मकांति का भान होता है खुले दर्शन दीदार होते हैं। भला हड्डी, मांस और चाम के शरीरों और हजारों मील लम्बी चौड़ी मुर्दा की हुई जमीन से भी कभी भारत बनता है ! मखौल के चोचलों से क्या लाभ होता है ! भारत तो केवल दिल की बस्ती है ! ब्रह्मकांति का मानो केन्द्र है ! भारत-निवासियों का राज्य तो आध्यात्मिक जगत् पर है। अगर यह राज्य न हुआ तो मुर्दा भूमि के ऊपर राज्य किस काम का ? जल न जायँ वह महल जहाँ ब्रह्मकांति से रोशनी न हो। गाली न लग जाय उन दिलों को जहाँ प्रेम और पवित्रता के अटल दीपक नहीं जगमगाते। ऐसे वेरस बेसूद फलों के इंतजार से क्या लाभ, जो देखने में तो अच्छे और जब जतन से बाग लगाए, फल पकाए तो खाने को वे काँट बन गए। चलो चले अपने

सच्चे देश को, इस विदेश में रहने, जूते खाने से क्या लाभ ? अपने घर को मुख माँड़ो ! बाहर क्या दौड़ रहे हो ?

पवित्रता का चितन करते हुए ये मेरे मन के कमरे की दीवारों पर जो चित्र लटक जाते हैं उनका वर्णन करना ही लेखक के लिये तो पवित्रता का स्वरूप जतलाना है। लेखक इस कमरे में कई बार घंटों इन चित्रों के चरणों में बैठा है—  
**पवित्रता का स्वरूप** इन चित्रों की प्रजा की और उनमें पवित्रता के स्वरूप को जितना हुआ अनुभव किया। चित्रों का, जो लेखक ने अपने इस बुतखाने में रखे हैं, वर्णन तो इस लेख में हो नहीं सकता परन्तु जितना हो सकता है उतना संक्षेप से अर्पण करता हूँ—

( १ ) ऊँचा पर्वत है, आसपास सुदाने देवदारु के जंगल नीचे तक खड़े हैं। मीलों लम्बी बर्फ पड़ी है, इसके चरणों में नदियाँ किलोल कर रही हैं। इसके सिर पर एक-दो, कोई एक एक मील लंबे, पिघली बर्फ के कुंड भी हैं। ऊपर नीला आकाश झलक रहा है। पूर्णिमा का चाँद छिटक रहा है। ठंडक, शान्ति और सत्त्वगुण बरस रहा है। सुख आसन में बैठे ताड़ी लगा, खुली आँखों में इस शोभा को देख रहा हूँ। आँखें खुली ही हुईं जुड़ गई हैं। पलक गिराने तक की फुर्सत नहीं, मुख खुला ही रह गया है। बंद करने का अवकाश नहीं मिला। प्राणों की गति का पता नहीं। इस अपने ही चित्र के समय घड़ियाँ व्यतीत हो जाती हैं। पाठक ! बैठ जाओ, मेरी जगह अपने आपको बिठा लो और देखो जब तक आपका जी चाहे।

( २ ) गंगा का किनारा है, एक शिला पर भट्ट हरिजी बैठे हैं। पद्मासन लगाए हुए हैं। ब्रह्मचरितन में लीन हैं। उनकी मुँदी हुई आँखों से एक-दो प्रेम के अश्रु निकलकर उनके तेज भरे कपोलों पर ढलककर जम गए हैं। मृग जंगल से दौड़ते आए और उनके शरीर को भी शिला जान अपने सींग खुजलाने लग गए। आकाश से एक

## पवित्रता

प्यासी चिड़िया उड़ती आई है और इस लाल शिला पर गंगाजल की बूंदों को देख अपनी पीली चींच से पी रही है। इतने में भर्तृहरिजी की समाधि खुली। भोलेपन आनंद आश्चर्य से भरी हुई—पता नहीं कहाँ को देख आई है। मुझे और आसपास की चीजों को तो कदापि नहीं देख रही थी उनके कंठ से स्वाभाविक ही शिव शिव की ध्वनि हुई। मैं पास बैठा हूँ। उनके दर्शन करते करते मेरे रोम रोम में शीतलता और सत्त्वगुण की बहार हो गई; मानो गंगास्नान से मेरी दखिद्रता दूर हो गई। उनकी ध्वनि की प्रतिध्वनि बहती गङ्गा के आलाप से सुनाई दे रही है। अद्भुत समय है। देखो इस चित्र को, बैठ जाओ।

( ३ ) एक हरे हरे घास के बड़े लम्बे-चौड़े मैदान के मध्य में दूध के रंग की एक नदी बह रही है। इसका जल साफ है। छोटे छोटे स्याह और काले, पीले और नीले, बड़े और छोटे शालग्राम गोता लगाए बैठे हैं। कई एक बालक नंगे हो होकर ध्वनि-प्रतिध्वनि करते करते किनारे से कूद कूदकर स्नान कर रहे हैं। कोई तैर रहे हैं। उनके सफेद सफेद पीले पीले शरीरों पर कुछ तो जल की रोशनी है और कुछ सूर्य की ज्योति की झलक है। इन शरीरों से सुगंध आ रही है। मुझसे न रहा गया। कपड़े उतार मैंन भी नंगे हाँकर कूदना शुरू कर दिया। पाठक ! अगर तैरा भी मन चाहे तो कपड़े उतार दे और इस ठंढे जल में कूद पड़। उन बालकों की तरह स्नान कर। मैं भी कभी कभी बाहर आकर नरम रेत के विस्तर पर लोटता था। कुछ शरीर पर मलता था, कुछ अपने केशों पर डालता था। कभी धूप में बैठा, कभी गोता लगाया। बताओ तो अब अवस्था क्या है।

( ४ ) एक और चित्र लटक रहा है। इसके देखते ही क्या पता क्या हुआ ? काली रात हो गई। हाथ पसारें भी कुछ प्रतीत नहीं होता था परन्तु जरा सी देर के बाद तारों की मध्यम

मध्यम ज्योति चित्रकार के हाथ से ऋद्धि पड़ती है। ऊपर का आकाश, गहनों से लदी हुई दुलहन की तरह इस एकांत में आ खड़ा है। इस चित्रकार की प्रशंसा करने करते मैं ठहर गया और कई घन्टे ठहरा रहा ! इस चित्रकार के ब्रुश से एक और भी अदभुत चित्र साथ ही साथ देखा। ब्रुश का कोई ऐसा इशारा हुआ कि इस ऊपरे चित्र में काली अंधेरी रात भागती प्रतीत होने लगी और कोई ऐसा विद्याकला का गोला चला कि कुल तारागण अपनी अपनी पालकियों में सवार हो बड़े जोर से भाग रहे हैं। मैं यह लीला देख ही रहा था कि अचानक रात थी ही नहीं और पर्वतों के पीछे से लाल लाल सूर्य निकल आया था। प्रातःकाल हां गया। गजर बज गए, फूल खिले, हवा चली। पत्नी अपने सितार ले मध्य आकाश में आशा अलापने लगे। पशु नीचे मिर किए हुए ओस में भरी हरी हरी घास का खाने लग गए। नदियाँ मानो एकदम अपने घरों से बह निकली। मैं और मेरी पत्नी साथ साथ जा रहे हैं और कभी इस शोभा को और कभी एक दूसरे को देखते हैं। पाठक ! उठो अब तो भोर हो गया।

(५) कुछ एक सामग्री का ढेर लगा है। मनो ही पड़ी थी ! अग्नि प्रज्वलित हुई। हवन कुंड में से लम्बो लम्बी ज्वालाएँ निकलने लगी ! हम दोनों देख रहे हैं। ऐसी पवित्रता का उपदेश हमने किसी गिरजे-मन्दिर में कभी नहीं सुना।

(६) अभी जरा मेरे नेत्र जो फिरे तो क्या देखता हूँ कि एक टूटे-फूटे सिद्धि के किनारों वाला कुंड है। उस पर सब्ज काई उग रही है। और कुछ एक प्रकार के पेड़ अपनी लंबी लंबी डालियों से तालाब के बाज हिस्सों को छाता लगा रहे हैं परन्तु सारे तालाब पर कमल फूल अपने चौड़े चौड़े हरे हरे पत्तों के सिंहासन पर सारी दुनिया के राजसिंहासनों को मात करते हुए अपने सौरभ्य गौरव में प्रसन्न मन विराज रहे हैं ! जो पवित्रता के स्वरूप को देखना है तो

## पवित्रता

पाठक ! क्यों नहीं प्रातःकाल इन कमलों को देखते ? पुस्तकों में और मरे लेखों में क्या धरा है ?

(७) बाह रे चित्रकार ! शाबाश है तेरी अद्भुत कला को, जिसने इस चित्र में, पता नहीं किम तरह, विराट् स्वरूप भगवान् को लाकर लटका दिया ! सारे का सारा विराट् स्वरूप जगत् दर्शाया है । और यह भी किमी की आँख में, परन्तु किम कला से दर्शाया है, न तो आँख नजर आती है, और न आँख वाले के कहीं दर्शन होते हैं । केवल विराट् स्वरूप ही देख पड़ता है । मुझे कृष्णजी महाराज का खयाल आया । उनके मुख को देखा, पर उनका चित्र ऐसी कला में संयुक्त नहीं । क्योंकि साथ ही साथ देखनेवाला भी नजर आ रहा है । इस अद्भुत चित्र के अन्दर ही अन्दर गुप्त प्रकार से लिखा है “पवित्रता” । इस शब्द को ढूँढ़ना है । जब तक यह न ढूँढ़ लूँ, इस चित्र को कैसे छोड़ सकता हूँ । यत्न पास खड़ा है । चित्रकार ने अपने इस चित्र के दर्शन का यह मूल्य रखा है अगर आगे बढ़ता हूँ तो साँस घुटी जाती है । ऐसा न हो कि युधिष्ठिर राजाधिराज के भाइयों की तरह इस चित्र देखने का मूल्य मृत्यु ही हो ! मुझे अवश्य इस गुप्त शब्द को ढूँढ़ना है, न ढूँढ़ूँ तो मृत्यु हो जायगी, दुःख होगा । भला ऐसे चित्र को देखना और उसके दर्शन की शर्त को न बजा लाना ऐसा ही पाप है कि मृत्यु हो जाय !

ऊपर के आए हुए चित्र तो साधारण तौर पर कुछ कठिन भी हों । और यदि पवित्रता का स्वरूप न भी भान हो तो नीचे और चित्रों के दर्शन से मैंने कई एक को पवित्रता का अनुभव होते वास्तव में देखा है ।

(८) एक टूटा-फूटा, कच्ची ईंटों का, मकान है । दीवारें इसकी मिट्टी से लिपी हुई हैं । इसकी छत घास के तिनकों से बनी है । किसी पत्नी का घोंसला नहीं । यह अच्छा बड़ा है । दरवाजा इसका बहुत

छोटा है। जरा अपनी लम्बाई को कम करके जाना पड़ेगा। सर झुकाकर अन्दर घुसना पड़ेगा। इसके अन्दर क्या प्रभुज्योति से चमकती हुई एक देवी बैठी है। उसने मुझे नहीं देखा और न आपको। बैठ जाइए, इसकी गोद में एक छः महीने का, चौद से मुखवाला, बालक है जिसके सफेद सफेद कपालों पर काले बाल लिपट रहे हैं। यह बच्चा दूध पीते पीते सो गया है। यह विद्या सुंदरता से भूषित सुन्दरी, इस अमूल्य बालक की माता है। अपने अत्यन्त प्रेम को दिल से बहा बहाकर आँखों द्वारा इस सोते बालक पर सफेद ज्योति की किरणों के समान बारिश कर रही है। इस प्रेम नूर की झड़ी साफ बरसती प्रतीत होती है। यह मरियम और ईमा हैं, इस मरियम ने घर घर अवतार लिया है। घर घर यह अमूल्य ईसा इस तरह अपनी माँ की गोद में सोया है। रैफल जैसे वैद्य, और सर्वकलासयुक्त चित्रकारों ने अपने सर्वस्व को इस चित्र की पवित्रता के चिन्तन में हवन कर दिया है। आयु इसकी प्रशंसा करते करते व्यतीत कर दी। माता की इस पवित्रता-स्वरूप निगाह, ध्यान करते करते मातावत् पवित्र हृदय हो गई। माता के इस रूप में लाखों पुरुषों ने जीवन का बपतिस्मा लिया। इस चित्र के नीचे लिखा है “पवित्रता का नमूना”। पाठक ! मेरे लेख में आगे क्या धरा है। जरा अपना बिस्तर खाल दो, जल्दी पढ़ने की मत करो। हो सके तो इस मोपड़ी में दिन-रात रहो तो सही। और कहाँ जाना है। इस देवी के चरणों में बैठ जाओ। इस पवित्र भाव की रज को अपने अन्दर के शरीर पर लगाओ। अपने मन को यही विभूति लगा लो। शिवरूप हो जाओगे। मरियम और उसके बच्चा की तस्वीर को हजार बार देखा होगा। परन्तु अब बैठ जाओ। हर मोपड़ी के अन्दर देखो कौन बैठा है।

(६) यह मरियम का लाइला बच्चा मा का दूध पी, माँ का अत्यन्त प्रेम पान करके जवान हो गया। लटे इसके कंधों पर लटक

## पवित्रता

रही हैं। इसके रूप पर अद्भुत तेज है। इसके नेत्र आकाश को उठे हुए हैं। पता नहीं किसको देख रहे हैं। इसका मस्तक चमक रहा है। पहचानो तो, यह कौन सपूत है।

(१०) समुद्र बीच में है। किसी की प्यारी बहन अपने देश में समुद्र के किनारे खड़ी है, और प्यारा वीर किसी जहाज को लेकर अन्य देशों में गया हुआ है। परन्तु यह बहन हर गंज उसके जहाज को देखने की आशा में समुद्र के विशाल विस्तार को घंटों देखती रहती है। जरा इसकी आँख को पूरे अनुभव से देखना। कभी कभी उस एक आँख को भी देखना जो आँखों से झड़कर समुद्र के जल में लीन हो जाता है। हो सके तो इसको अपनी बहन जानकर अब अपने हृदय को भी आजमाना। यह भी पिघलता है कि नहीं? वह जहाज आया। सीटी बजी। लंगर गिरा। भाई ने दूर से अपने रूमाल को लहरा लहरा कर हृदय में प्यारी बहन को नमस्कार किया। बहन ने भी दूर से अपने पतले पतले बाहु पसार अपने सुन्दर हाथों से अपने वीर का स्वागत किया। न्याँछावर हुई। इतने में भाई बहन दोनों एक दूसरे के गले लगकर रो पड़े। इस चित्र के नीचे लिखा था “पवित्रता का बादल” छम छम छम छम, रम रम, रम रम।

(११) दूर दर्राज से पिता सफर तै करके घर आया है। वह पुत्री दौड़ती बाहर आई है। इस कन्या की साड़ी सिर से उतर गई है। इस तेजी से दौड़ी है कि खुले केश पीछे पीछे रहे जाते हैं। मुख खुला है। बोल कुछ नहीं सकती। इतने में पिता उसे गले लगाकर ज्यों ही अपनी पुत्री के सिर पर प्यार देने मुका तो आँखों से मोतियों का हार झलककर उसके केशों पर बिखर गया। यह मोतियों का हार इस चित्र में क्या सुहावना लगता है !

(१२) सीताजी अयोध्या में अपने महल की सीढ़ियों पर खड़ी हैं, और लक्ष्मणजी धनुष-बाण कंधे पर रखे, सर मुकाए हाथ जोड़े

पास खड़े हैं, इनके चरणों की ओर देख रहे हैं , और सीताजी के मनोरंजक वाक्य और आशा को सुन रहे हैं ।

(१३) जंगल बियावान (निर्जन्तुक) है । लंबे लंबे पेड़ खड़े हैं । कोई सुखे हैं कोई हरे । सत्यवान् जी कंधे पर कुल्हाड़ा रखे आगे आगे जा रहे हैं । देवी सावित्री पीछे पीछे जा रही हैं । एक जगह दोनों बैठ गए हैं । वे इनको देखती हैं, ये उनको देखते हैं । वे उनकी गोद में और ये इनकी गोद में लेट रहे हैं ।

(१४) नदी पर एक एकान्त स्थान में बहुत सी कन्यायें, स्त्रियाँ, देवियाँ स्नान कर रही हैं । शुकदेव जी पास से गुजर रहे हैं । उनको कोई भय नहीं हुआ । वे वैसे की वैसे खुल्लमखुल्ला नंगी नहा रही हैं । नदी का जल मारे आनन्द के कूद रहा है । ये उछल रही हैं ।

(१५) वह राजबालक ध्रुव, ताड़ी (ममाधि) बाँधे जंगल में शेरों के मुँह में अपने हाथ को दे रहा है, खेल कर रहा है । प्रतीत होता है लड़ रहा है ।

(१६) छोटे छोटे बहुत से बच्चे बैठे हैं, पुस्तक हाथ में है और पढ़ रहे हैं, काँय काँय हो रही है ।

( १७ ) एक नौजवान है फटी हुई बिना बटन की कमीज गले में है । सिर नंगा है । पाँव नंगा है । किमी की तलाश में है । चारों ओर देखता है । कभी इस पेड़ के और कभी उस पेड़ के पास जा खड़ा होता है । रोता है । वृद्ध भी उसके साथ रो उठते हैं । प्रेम की मदहोशी में वह गिर पड़ा है । आँसू बह रहे हैं । पृथ्वी की रज उसके बालों में विभूति की तरह लग गई है । कभी गिरता है, कभी उठता है । कभी बादल को देख उसे जाते जाते खड़ा कर लेता है । शायद किसी को पत्र भेज रहा है । नदी से, पथरों से, पक्षियों से, पशुओं से बातें करता जा रहा है । अभी यहाँ था, अब नहीं है ।

## पवित्रता

( १८ ) दमयंती राजहंसों के पास खड़ी है । नल का इंतजार कर रही है । आप भी पास बैठ जाइए । आपकी माता है, बहन है, देवी है ।

( १९ ) एक अनाथ अजनबी अभी अपने प्राणों को त्याग, एक दरख्त के नीचे सड़क-किनारे उम नींद में सो रहा है, जिससे कभी नहीं जागेगा । अपना शरीर आपके हवाले कर गया । उसका मृत्यु संस्कार आपको करना है ।

( २० ) राजा जनक को सभा लगी है । ऋषि लोग बैठे हैं । ब्रह्मवादिनी गार्गी ओखों में कपिलवाली लाली लिए हुए आ खड़ी हुई है । सब आश्चर्यवत् हो गए । गार्गी नंगी है, पर बिजली के जोर से यह देवी कह उठी—जाओ अभी सब शूद्र हैं चमार हैं । वह जा रही है । आकाश प्रणाम करता है, पृथ्वी काँप रही है ।

( २१ ) सफेद ऊन के कोट पहने ये छोटी छोटी भेड़ें इस टप्पर में दर्शन दे रही हैं । कोई खड़ी, कोई बैठी और कोई फर्लांग मार रही है ।

( २२ ) क्या सुहावना अरबी घोड़ा खड़ा है, काठी-लगाम से सजा हुआ है । सवार लड़ाई में शहीद हो गया है । यह घरवाले सम्बन्धियों को खबर करने अकेला ही चला आया है । दुलदुले बेयार सामने खड़ा है । कौन इस अनाथ घोड़े को देख नहीं रो उठेगा । पाठक ! क्या हृदयगम्य उद्देश को लिए जगत् में एक ही अपनी भिसाल आप खड़ा है । मुख नीचा किए हुए किसी दर्द से पीड़ित हो रहा है ।

( २३ ) मेवाड़ देश की महारानी, भारतवर्ष की जान, मीराबाई राज छोड़कर रज पर बैठी है । उसके दिव्य नेत्र खुले हैं । साधारण जगत् कुछ भी नहीं देख रहा है । इतने में राजाजी ने मस्त हाथी दौड़ाया कि इस देवी को कुचल डाले । मैं पास बैठा हूँ । क्या देखता

हूँ कि देवी के पास आ हाथी की मस्ती खुल गई। उनके चरणों में नमस्कार की ओर चल दिया। जब कभी मेरा हृदय विक्षिप्त होता है, मैं यहाँ आकर इस देवी के चरणों की रज को ले अपने मस्तक और नाभि, दिल और चक्षु और सिर में लगा उन्हें पवित्र करता हूँ।

( २४ ) राजाओं के राज्य, राजधानियों की राजधानियों नष्ट हो गईं। वे तन्त्र जिस पर बैठते थे तन्त्र हो गए, मिट्टी में मिल गए। परन्तु समय के प्रभाव को देखिए सारे भारतवर्ष की महारानी नूरजहाँ रावी नदी के किनारे लाहौर शहर के उस तरफ मामूली धरती की गुफा में लेटी है, कभी कभी उठकर एक निगाह इस सारे देश पर करती है। सब्ज काही रोज जा जाकर उसके चरणों पर नमस्कार करती है। ग्रीष्म ऋतु रंग-विरंग के पत्ते इसके ऊपर बरसाती है। वसंत ऋतु जब कभी आती है उसके सिर पर फूलों की वर्षा करती है। इस भारत की महारानी के स्थान की यात्रा यहाँ आ होती है। मुझे आप आशीर्वाद देते हैं, और अपनी मलका का दर्शन कर मैं अजीब भावों से भर अपने पाठक के मुख को देखता हूँ।

( २५ ) वह कौन बैठे हैं ! कमल के फूल का सिंहासन है, उस पर पद्मासन लगाए निर्वाण-समाधि में लीन, कपिलवस्तु का राजकुमार बैठा है। जगत् को जीत चुका है। राजाओं का राजा है। बुद्ध के पत्थर के गढ़े चित्र तो कई देखे, वे भी अद्भुत हैं। पर शाक्यमुनि बुद्ध आप सभी से अद्भुत हैं। दर्शन दुर्लभ तो नहीं, वह रुकने तो नहीं, उनको तुम्हारी खबर भी नहीं। पर दीदार खुले होते हैं। जहाँ बुद्धजी का चित्र है, वह मन पवित्र है, स्थान पवित्र है।

( २६ ) किसी गाँव की एक गली है। किसान लोग रहते हैं। वह कौन आया ! जिसे देखने सब के सब नर-नारी बालक घरों से बाहर निकल आए। नीली नीली विभूति रमाए, एक हाथ में भिक्षापात्र, दूसरे हाथ में पार्वती को पकड़े साक्षात् शिव-पार्वती आ रहे हैं।

## पवित्रता

अब मंगल होगा। सब को वर मिलेगे। वह लो—शिवजी ने सिन्धी बजाया। सोने के बर्तन में दूध भरे गाँवों की स्त्रियाँ भिक्षा देने आई हैं। ठहरते तो नहीं, जा रहे हैं। मंगल, आनंद, सुख की वर्षा करते जा रहे हैं।

( २७ ) कलकत्ते के पास एक निरक्षर नंगा कालीभक्त है। कालीभक्त क्या ? ब्रह्मकाति का देवनेवाला फकीर है। इसके नेत्र और इसका सिर, मेरे तेरे नेत्रों और सिरों से भिन्न हैं। किसी और धातु के बने हुए हैं। मामूली साधु नहीं, जो छू छू करते फिरते हैं। एक कोई स्त्री आई। आप चीखकर उठे। माता कहकर उसके चरणों पर सिर रख दिया। मेरी तेरी निगाहों में यह कंचनी ही थी। पर रामकृष्ण परमहंस की तो जगत् माता निकली। देखकर मेरी आँखें फूट गईं। और मैंने भी दौड़कर उसके चरणों में शीश रख दिया। तब उठाया, जब आज्ञा हुई। दरिद्रो ! तुम क्या दे रहे हो ? मेरे सामने परमहंस ने कुल विराट् इस माता के चरणों में लाकर रख दिया। नेत्र खोल दिए। अहिल्या की तरह अपना साधारण शरीर छोड़कर यह देवी आकाश में उड़ गई। कहोगे “पूर्ण” तो मूर्तिपूजक हो गया ? कुछ भी कहा—मेरे मन की कोठरी ऐसी मूर्तियों से भरी है। इस बुतपरस्ती से पवित्रता मिलने के भाग खुलते हैं, पवित्रता को अनुभव कर ब्रह्मकाति का दर्शन होता है।

कंगाल तो मैं हूँ जरूर और मुझमें कोई चित्र खरीदने का बल नहीं। परन्तु मित्रो ! आकाश से एक दिन अमूल्य चित्रों की बारिश हुई थी। मैंने अपने घर के नीचे ऊपर से, सहन से, छत से इकट्ठा करके एकत्र कर लिए थे। पहले तो रखने का स्थान नहीं था परन्तु जब प्रेम से मन की दीवारों पर लगाने लगा तो क्या देखता हूँ कि मेरे मन में अनन्त स्थान है और आनन्द से चित्र लटक रहे हैं। मित्रों !

सारे विराट् को लटकाकर मैंने देखा कि अभी मेरा कमरा खाली का खाली ही था ।

प्रिय पाठक ! प्रथम मुझको यह प्रकट करना है कि इस शीर्षक के नीचे आकर यदि कई हम देश के बड़े बड़े आदमी भी कट जायँ, यदि कई एक बे-नाम भारतनिवासियों के दिल के खिलौने आजकल के टूट जायँ, यदि कई एक बागियाना विचार आजकल के कल्पित हिन्दू धर्म के विरुद्ध युद्ध का झंडा उठावें, यदि प्राचीन ऋषियों की आज्ञा का भी कहीं कहीं पालन न हो, यदि सोमनाथ के मुर्दों और हृषिकेश एवं हरद्वार के जीते लोगों के पूजा के शरीरों का अन्त हो जाय; कुछ भी हो, उससे कभी भी यह परिणाम न निकालना कि मेरा अभिप्राय स्वप्न में भी प्राचीन ऋषियों—ब्रह्मकान्ति में रहने वालों—की आज्ञा का तिरस्कार करने का है, या उनके उपदेश किए हुए आदर्शों के तोड़ने का है, या आक्षेप लगाना स्वीकृत है, या कभी उनके सम्मुख होकर बिना सिर झुकाए गुजरना है या किसी प्रकार से अपने देश-निवासियों के हृदय को दुखाना है या क्लेश देना है । मेरा अभिप्राय कुछ है, परन्तु किसी दशा में भी वह नहीं, जो बता चुका हूँ ।

दुनिया की छत पर खुश खड़ा हूँ तमाशा देखता ।

गाहे बगाहे देता रहा हूँ बहशियों की सी सदा ॥

मेरी तो एक “बहशियों की सी सदा” है । सुनो या न सुनो इससे कुछ प्रयोजन नहीं, ईश्वर की इस लीला में आप वहाँ रहते हैं, मैं यहाँ रहता हूँ । इसलिये क्षमा माँगकर अब मैं अपनी दृष्टि, अपने ऐसे ही माने हुए देश की ओर फेरकर जो देखता हूँ वह बेधड़क कहे देता हूँ ।

देश मे, पता नहीं, न जाने कहाँ से किधर से कैसे और क्यों

## पवित्रता

अपवित्रता आ गई है कि हमारे हाथ ऋषियों का इतना बड़ा आदर्श—

त्याग और वैराग्य का आदर्श—मटियामेट हो गया ?

त्याग, वैराग्य महात्मा बुद्ध ने त्याग किया, ईसा ने त्याग किया,

और इनके शंकर ने त्याग किया, रामकृष्ण परमहंस ने त्याग

अनर्थ किया, स्वामी दयानन्द ने त्याग किया, स्वामी राम

ने त्याग किया, भर्तृहरि ने त्याग किया, गोपीचन्द

ने त्याग किया, पूर्ण भक्त ने त्याग किया और वैराग्य का बाना लिया ।

बस अब किमान भी हल जोतने को त्याग उनका सा रूप सँवार चले

गंगातट को, चले हृषीकेश को वहाँ अन्न मुफ्त मिलता है । छोटे छोटे

बालक और नवयुवक भी कूदे । अहह ! आदर्श के दर्शन हुए कमीज

और पाजामा उतार दिया । जोश आया, वैराग्य आया, गेरुए रङ्ग के

वस्त्र धारण किए हुए फिर रहे हैं और दिन कटता ही नहीं । रात

गुजरती ही नहीं । जङ्गल खाता है । एकान्त भाता ही नहीं । सभाएं हों,

पुलपिट हों, कालिज हों, स्कूल हों, आप अपने आपको दान देने को

तैयार हैं । बलिदान हो चुका, यज्ञ हो गया । स्त्री का मुख देखना पाप

है । बड़े बड़े वैराग्य के ग्रंथ खोल, गेरुआ रङ्गे हम अपनी माता बहिन

और कन्याओं को नग्न कर करके उनके हड्डी मांस की नस नस को गिन

गिनकर तिरस्कार करते हैं । क्यों भाई ! बिना हमके भला वैराग्य और

ब्रह्मचर्य का पालन कब होता है ? वैराग्य और त्याग के उपदेश हो रहे

हैं कि बस आत्मिक पवित्रता इसी से आएगी । जगन् बस अभी जीता

कि जीता, किला सर हो गया । आपका बोलबाला हो गया ।

नहीं प्यारे ! जरा थम जाओ, जरा अपने शरीर को देखो, जरा बुद्ध

के शरीर को देखो जरा शंकर भगवान् के रूप को देखो, जरा बड़े बड़े

महात्माओं के शरीर को देखो । यदि ये शरीर पवित्र हैं तब उनकी

माता का शरीर किसलिये अपवित्र मान लिया ! यदि इन सबको

पीतांबर पहनाकर पूजते हो तब वैराग्य और त्याग में मस्त लोगो, भला

इनकी माताओं को, इनकी बहनों को इनकी कन्याओं को क्यों नग्न कर रहे हो ?

द्रौपदी की साड़ियाँ उतार उतार अपनी पवित्रता के साधन कर रहे हो ? फूँक क्यों नहीं डालते उन ग्रन्थों या हिस्सों को जहाँ तुमको ऐसा बहशी बनाकर पवित्र बनाने के झूठे वचन लिखे हैं । किससे छिपाते हो ? ज्यों ज्यों द्रौपदी को नग्न करने में लगे हों त्यों त्यों तुम्हारा वैराग्य और त्याग गङ्गा में बह रहा है । गेरुए कपड़े के नीचे वैसे के वैसे न सजे हुए पत्थर की तरह तुम निकले । ऐसा तिरस्कार करना और अपवित्र होना यह तो मन की चंचलता और ध्यान के अद्भुत नियमों को हड़ताल लगाना है । कदाचित् असम्भव सम्भव हो जाय परन्तु ऐसे वैराग्य और त्याग से जिनमें अपनी माताओं, बहनों, कन्याओं के नग्न शरीरों को नीलाम करके पवित्रता खरीदनी है तब कदाचित् पवित्रता न कभी मन में आयागी, न दिल में, न आत्मा में और न देश में ही । मेरा विचार है कि कारण चाहे कुछ भी हो, हमारे देश में इस झूठे त्याग और वैराग्य के उपदेश ने पवित्रता, अकपटता, सच्चाई का नाश कर दिया है । जिस उपदेश में मेरी माता का, मेरी बहन का, मेरी स्त्री का, मेरी कन्या का तिरस्कार हो और वैसे ही तुम्हारी का, भला वह कब मेरे तरे हम सब के लिये—देश भर के लिये—कल्याणकारी हो सकता है ? गूर्य चाहे अंध होकर काला हो जाय, परन्तु जहाँ स्त्री-जाति का ऐसा तिरस्कार होता है वहाँ अपवित्रता, दरिद्रता, दुःख, कंगाली, झूठ, कपट राज्य न करे, चर्चाल गद्दा पर न बैठे यह कदापि नहीं हो सकता । हे बुद्ध भगवन् ! क्यों न आपने अपने बाद आने वाले बुद्ध के नाम को ले लेकर संसार को अपवित्र बनाने वालों का विचार किया ! क्यों न आपने डंके की चोट में इस अनर्थ के निवारणार्थ अपने बाद इस पुरुष की माता, पुत्रों, बहनों को, इस नीचे पुरुष के लिये अपने सामने उच्च सिंहासन पर बिठा इसको आज्ञा दी कि बचपन से लेकर जब

## पवित्रता

तक इसको ब्रह्मकांति का महा आकर्षण स्वाभाविक बुद्ध न बना दे तब तक यह अपना क, ख, ग, घ और अ, आ, इ, ई इस देवी के मिहासन के पास बैठकर पड़े। जो कुछ हो गया या बुद्ध पैदा ही हुआ उसे आपको भिक्षुक होने का उपदेश देने की क्या आवश्यकता थी ? आपको किसने उपदेश दिया था कि आपने कपिलवस्तु राजधानी को लात मार युवावस्था ही में ब्रह्मकांति की तलाश में—उम अनजानी ज्योति के स्वरूप की तलाश में—जंगल जगल घूम अपने शरीर को मुखा लिया, हड्डियाँ कर दिया। हे भगवान् ! आकर अब जरा देखिए तो सही, आपके बाद आज तक बुद्ध कोई न हुआ। किसी माता को आपकी माता के समान ब्रह्मकांति का दर्शन लाभ न हुआ और कोई माता भी ब्रह्मकांति को अपने गले में ले बुद्ध को अपने पेट में अनुभव न कर सकी। आपका नाम ही नाम रह गया है जिसके सहारे कई ईंट पत्थर रोड़े के मंदिर खड़े हो गए। बुत बन गए परन्तु मनुष्य डूब गया। इसके नीचे आ मर गया, मनुष्यता अपवित्रता की कीचड़ में फँसकर मर ही गई। जिसके बचाने के लिये आप आए थे वह न बचा !

हे शंकर भगवन् ! आपने विनयपूर्वक आज्ञा माँगकर आपकी सेवा में उपस्थित होता हूँ। आपको तो हिमालय माता था, आपको तो वेद श्रुति दर्शनग्रंथ, ब्रह्मकांति के दर्शन, कोई और काम न करने देते थे। आपको कोई और हल न चलाना था। आपके दर्शनो ही से सूर्य और चन्द्र उसी नोली खेती में ज्योति स्वयमेव बोते थे। परन्तु मैं तो एक अपने अपवित्र देशनिवासियों के विरुद्ध अपील लेकर आया हूँ। आपके जाने के बाद संन्यासाश्रम का नाश हो गया। सच कहता हूँ, मेरे देश का संन्यास अपवित्र हो गया, लुप्त हो गया। आपने तो इन लोगों की खातिर अपने एकांत के सुख का, जो आचार्य गौड़पाद ने भी न छोड़ा, त्यागकर इनके कल्याण के लिये दिग्विजय किया। काश्मीर से रामेश्वर तक आपने ब्रह्मकांति का गायन किया। परन्तु आपके जाने के बाद

लोगों ने इस देश में गंगोत्तरी, हृषीकेश, केदारनाथ, बदरीनारायण को भी अपवित्र कर दिया। गेरुआ रंग को न तो पवित्र धरा पर ही रहने दिया और न आपके शरीर पर। अब तो गेरुआ रंग मखमल के तकियों पर, चमड़े की बगियों पर, जागीरों और मठों के एकत्र किए हुए खजानों पर रखा है। दासत्व, कमजोरी, कमीनापन, कपट का पर्दा हो रहा है।

भगवन् ! तीसरा नेत्र खोलकर जरा इस देश के गेरुआ रंगे उप-देशको के अंदर के अंधकार को क्यों नहीं देखते ? सारा देश तो आपके पीछे इनको आपका रूप जानने लगा है। परंतु ज्यों ज्यों समय गुजरता जाता है त्यों त्यों मृत्यु और दुःख भूख और नग्नता इस देश में बढ़ रही है। क्या ब्रह्मज्ञान का फल यही है ? महाराज ! सरस्वती देवी से तो आप छः महीने हारे रहे, क्यों न आपने हार मान ली और उस देवी को अपने सिंहासन पर बिठाया और क्यों न आप इस देश में इस देवी का राज्य अटल कर गए। आप मेरे देशनिवासियों की माता पिता हैं। फिर यदि अपने हाथों स्त्री और कन्या को राजतिलक दे जाते तब क्या शंकर का इस देश में जन्म लेना कभी ऐसा असंभव होता, जैसा अब हुआ है ? मैं आपका बागी पुत्र आपसे प्रेम को लड़ाई करने आया हूँ। आपको यह राज्य अब देना ही पड़ेगा। आपके चरण इस पृथ्वी को स्पर्श कर चुके हैं। इस देश की रज को आपका स्वरूप मानकर मैं तो अब लो यह राज्य दिए देता हूँ।

जब तक आर्य्य कन्या इस देश के घरों और दिलों पर राज्य नहीं करती तब तक इस देश में पवित्रता नहीं आती ! जब तक देश में पवित्रता नहीं आती, तब तक बल नहीं आता। ब्रह्मचर्य्य का प्राचीन आदर्श सुख नहीं दिखलाता, देश में पवित्रता लाने का हे भगवन् ! अब तो पहला संस्कार भारत-कन्या को राज्यतिलक देना है।

सच है, देश में अपवित्रता समष्टि रूप से है। एक दो को यदि

## पवित्रता

पवित्रता किन्हीं और साधनों से आ भी गई तो वह साधन क्या हुए जिन्होंने मेरी और तेरी आँख ठीक न की।

ब्रह्मचर्य का उपदेश इस देश में प्राचीन काल से चला आया है और आजकल कोई भी समाज हो, मंदिर हो, सभा हो, सत्संग हो,

जहाँ इस देश में ब्रह्मचर्यपालन के ऊपर उत्तम ब्रह्मचर्य का मे उत्तम व्याख्यान और उपदेश न होते हो, परन्तु उलटा उपदेश अपने दैनिक जीवन को देखो। कल यदि सात फुट लम्बे आदमी थे तो आज छः फुट रह गए।

कल के कालिजों में तो पाँच फुट के बालक पढ़ते थे आज चार फुट के ही रह गए। क्या उलटा परिणाम है। न हृदय में बल, न बुद्धि में शक्ति, न मन में साहस, न उच्च विचार, न पवित्र जीवन, न दया, न धर्म, न धन, न माल और इस देश में जहाँ ब्रह्मर्षियों ने संसार के आदि में गाया था :—

तेजोऽसि तेजो मयि धेहि । वीर्यमसि वीर्यं मयि धेहि । बलमसि बलं मयि धेहि । ओजोऽस्योजो मयि धेहि । मन्युरसि मन्युं मयि धेहि । सहोऽसि सहो मयि धेहि ॥ ६ ॥ य० १६ ॥६॥

और अफ्रीका के हवर्शी जिनको ब्रह्मचर्य का आदर्श कभी स्वप्न में भी नहीं आया, वे हमसे लंबे, हमसे चौड़े और हमसे अधिक पराक्रमी हैं।

इंग्लैंड में जहाँ इस पर कभी इतना जोर न दिया गया, वहाँ के आजकल के लड़के भी हम से अधिक लंबे, चौड़े, बलवान्, तेजस्वी, शानवान्, विद्वान् संपत्तिमान्, बुद्धिमान् है। हमारी कन्याएँ दुर्बल, गीले रंग की, जवानी में भी बुढ़ी सी और उस देश की माताएँ और कन्याएँ छः छः फुट ऊँची, शुर्खी और बल और तेज की हँसी लिए हुए अकेली सारे जगत् को प्रातःकाल चलकर घूमघाम शाम को घर पहुँच जायँ।

जापान को देखो। वहाँ किसी बालक को कभी ब्रह्मचर्य का आदर्श इस जोर से, इस अगड़ रगाड़ से; नलों से नहीं पिलाया जाता—जैसे यहाँ। परन्तु सबके सब फूलों के समान खिले चेहरेवाले हैं, बलवान् हैं; विद्यावाले हैं, महान् अनुभवोंवाले हैं, उच्च उद्देश्यवाले हैं। हर कोई कहता है—

ढटकर खड़ा हुआ हूँ खाली जहान में।

और तसल्ली दिल भरी है मेरी दम में जान में।

कौन सा प्रलय आ गया कि हमारे देश से ब्रह्मचर्य का आदर्श अमली-तौर पर बिल्कुल नष्ट भ्रष्ट हो गया? नजर ही नहीं आता; मुझको देखो, तुझको देखो, इसको देखो, उसको देखो। सब जले भुने सड़े सड़ाण चेहरे लिए हुए आर्य ऋषियों का नाम ले रहे हैं।

बस महाराज! ब्रह्मचर्य के इस विचित्र उपदेश को बंद करो जिसमें तुमने स्त्री जाति का तिरस्कार किया है। अमली तौर से वैराग्य के घने उपदेशों से स्त्री जाति का तिरस्कार किया है। ब्रह्मचर्य अब इस अपवित्र देश में बिना मातृ-भक्ति के, कन्या पूजा के कभी स्थापित नहीं हो सकता। इस देश में क्या, कहीं भी ऐमा नहीं हो सकता। ऐसा ही उपदेश करते करते ईसा की हार हुई। बुद्ध की हार हुई, शंकर का दिग्विजय हार में बदल गया। इस हार ने संन्यासी साधुओं के छक्के छुड़ा दिये। सारी फौज इन स्त्री जाति के अहित, ब्रह्मचर्य पालन करानेवाले जरनेलों की तितर-बितर हो गई, पता ही नहीं लगता कहाँ गई।

जब ये हार गए तब इनके स्वरूप पर गढ़े हुए आश्रम और समाज, स्कूल और कालिज कब जीत सकते हैं? इन रुंड मुंड संन्यासी रूप विद्यालयों को क्यों बना रहे हो? जो बुद्ध और शंकर का, ईसा और चैतन्य का दर्शन न करा सका वह भला मातुरहित

## पवित्रता

भक्तिरहित, कन्यारहित बी० ए० एम० ए० साधारण अध्यापकों की मिट्टी और ईंट के रूखे सूखे घर कब करा सकते हैं ?

दान लेना नहीं, दान देना भी एक पवित्रता का साधन माना जाता है परन्तु दान देने का वह प्राचीन भाव तो काफ़ूर की तरह इस देश से उड़ गया है। दान देने से तो अपने पापों को जिनसे धन आजकल कमाया जाता है, छिपाने की गरज है।

पवित्रता के चितन और ग्रहण से क्या प्रयोजन है ? जिस तरह रिश्वत दे देकर धन एकत्रित होता है उसी तरह ईश्वर को भी रिश्वत देकर स्वर्ग लेने की मनशा हो रही है। ऐसा इकट्ठा करके वैसे दे देना, धर्मशाला बनवा देना, चेतन लगवा देना, ईश्वर की आँखों में नमक डालकर अपने आपको चतुर कहना—भारतवर्ष के आजकल के जीवन के निघंटु में दान के अर्थ यही मिलते हैं। बस ! एकदम बंद कर दो दान देने को और रुपया जमा कर सकते हो तो करो। किसान की तरह अपना पसीना जमीन के अंदर निचोड़ जो कुछ दाने मिलते हैं उनको खाओ, स्वर्ग और ईश्वर को अपने ताँबे और चाँदी के रुपयों और सोने के डालरों से खरीदने इधर उधर मत भागो। भूखे मर रहे हो, खुद खाओ और अपने बालबच्चों को खिलाओ और कुछ काल के लिये चुप हो जाओ। अपने बच्चों को विद्या दान दो, बुद्धि दान दो। यही तुम्हारा और यही ईश्वर का स्वर्ग है।

कहाँ हैं तुम्हारे साधु, जिनके हुकुम से हाथ बाँधे ये कलकत्ते के सेठ या पेशावर के ठेकेदार गुलाम फिर रहे हैं। अगर वे साधु हैं तो क्यों नहीं ब्रह्मतेज से इनका शासन करते ? क्यों नहीं ताड़ते ? उल्लुओं के स्वर्ग क्यों बनने देते हैं ? हे राम ! इनको क्या हो गया है कि सती स्त्रियों के गहने बिचवा बिचवाकर अपना अमूल्य सिर छिपाने के लिये लाख लाख रुपयों की कुटिया बनवा रहे हैं जहाँ मार्कण्डेय ने

अपनी सारी आयु तारों की धीमी धीमी रोशनी के नीचे काट दी !  
 कौन से चेतना से ये रोटी खा रहे हैं ? जहाँ गरीबों का लहू निचोड़  
 निचोड़ जालिम रोटियाँ बनवा रहे हैं ।

बहुत उछले तो पवित्रता के साधन के लिये महाराज पतंजलि  
 का ग्रंथ उठा लिया । होने लगे अब जप तप माला पकड़ी, आँख मूँद

बैठे, ध्यान होने लगा है ? अजी ! ध्यान किस वस्तु  
 तप का ? किस स्वरूप को देखने को आखे मूँदी है ?

वहाँ तो कुछ नहीं, मन कैसे लगे ? एक दो घटे  
 मन को बेलगाम दौड़ाकर “शान्तिः शान्तिः शान्तिः” कर योगीजी  
 नजर जमीन पर लगाये हुए हैं । वह किसी अँगरेज के दफ्तर के  
 हेडक्लर्क जा रहे हैं । कलम जब चलती है, दूसरो का गला काटती  
 है । लिखते तो ठीक मेलट्रेन की तरह है । क्यों न हो ? योग का बल  
 हाथ में है ।

पतंजलि महाराज ने अपना ग्रंथ मनुष्यों के लिये लिखा था ।  
 पशु तो उसका पाठ भी नहीं कर सकते । पतंजलि महाराज के कृपा-  
 कटाक्ष से आपको कुछ बुद्धि उत्पन्न हो गई थी । मैंने तो पक्षियों और  
 पशुओं को भी जप तप संयम का साधन करते देखा । यह महाग्रंथ  
 काठ के पुतलो के लिये कदापि नहीं लिखा गया जिनके हाथ में माला  
 आई और सहस्रो वर्ष व्यतीत हुए । माला के मनके ही फिर रहे हैं ।  
 जप के साधनों का भी अन्त नहीं हुआ । कुटिलता नीचता, कपटता  
 अन्दर भरी हुई है और माला मनकों के ऊपर से हजारों बार चली  
 जाती है और इतनी सदियाँ हुईं अब तक चलो ही जा रही हैं । जब  
 तक हम मनुष्य नहीं बन जाते तब तक तुम्हारे लिये कल्याण का  
 साधन न कोई गुरु, न कोई वेद, न कोई शास्त्र, न कोई उपदेश हो  
 सकता है ।

इसका सबूत चाहो तो इस बाहर से माने हुए भारत निवा-

## पवित्रता

सियों के मकान, गली-कूँचे, घर का जीवन और सदियों का लम्बा जीवन देख लो। किसी ने इन काठ के पुतलों को जो कहा कि तुम ऋषिसंतान हो, बस अब हम ऋषिसंतान हैं। इसकी माला फिरनी शुरू हुई ! इधर तो यांग प्राप्त न हुआ, कैवल्य का कुछ मुख न देखा, इधर अब माला शुरू हुई है, देखिए ये कब ऋषि-रूप होते हैं। हमारी अवस्था भयानक है। मरे विचार में प्राचीन ऋषियों के साथ आज कल के भारत निवासी उनकी शूद्रों की श्रेणी से भी कम पदवी के हैं। वे ऋषि अब होते तो सच कहता हूँ हमको भले-छह कहकर हमसे धर्म-युद्ध रचते और हमें इस देश से निकाल इस धरती को फिर से आर्य-भूमि बनाते। उन्होंने असुरों से युद्ध मचाया ही था और असुरों को परास्त किया ही था। वे जब असुरों को संहार न सके तो हम मैले-कुचैले लोगों को अपने पास कब फटकने देते। क्या असुर, जन्म से उनके पुत्र पौत्र नहीं थे ?

तप नहीं, दान नहा, ज्ञान ही नहीं। हाय ! वह वस्तु जिसको पाकर शाक्यमुनि बुद्ध हो गए, जिसको पाकर मीराबाई हमारे हृदय और बुद्धि को हिला देनेवाले बल में बदल गई,

**ज्ञान** जिसको पाकर एक तरखान का बच्चा आधे जगत् का अधिपति हो गया, जिसको पाकर जुलाहे चमार

चंडाल ब्राह्मणों से भी उत्तम पदवी को प्राप्त हो गए, जिसके चमत्कार से बालक ध्रुव अटल पदवी को पाकर न हिलनेवाला तारा हो गया, वह ज्ञान जिसकी महिमा गाते गाते महाप्रभु चैतन्य अपनी सारी विद्या को भूल गए, जिसके महत्त्व से एक ऊँट लादनेवाला चाकर ऐसा बलवान् हुआ कि कुल पृथ्वी उस ज्योतिष्मान् पुरुष के बल से उभड़ उठी; उसके आ जाने से तो और भला क्या बाकी रहा परन्तु नहीं, भारत-निवासियों ने एक प्रकार की पुड़िया और गोली बनाई है जिसको खाते ही चन्द्रमा चढ़ जाता है। ज्ञान हो जाता है वह हो पास तो फिर

कुछ और दरकार नहीं होता। ओ जगत्वालो ! बड़ी भारी ईजाद हुई है। छोड़ दो अपनी पदार्थविद्या, जाने दो यह रेल, यह जहाज, ये नये नये उड़नखटोले, हवा में तैरनेवाले लाहे के जजीरे। प्रकृति की क्यों छान-बीन कर रहे हो ? इससे क्या लाभ ? हृषीकेश में वह अनमोल गोली बिकती है, और सिर्फ दो चपाती के दाम, जिस गोली के खाने से सारे जन्म कट जाते हैं; सब पाश टूट जाते हैं; और जीवन-मुक्त हो सारे ससार को अपनी उगालिया पर नचा सकोगे, बिना नेत्र के, बिना बुद्धि के, बिना विद्या के, बिना हृदय के, बुद्धवाले निर्वाण, पतजलि वाली कैवल्य, वैशेषिकवाली विशेष, वेदान्त वाली विदेह मुक्ति मिलती है। बेचनेवाले देखा व जा रहे हैं। तीन-चार पुस्तके हाथ में हैं और तीन-चार पुस्तके बगल में। आपको इन दो पुस्तकों के पढ़ने से ही ब्रह्म की प्राप्ति हो गई है, ज्ञान हो गया है। एक बेचारा पंजाबी साधु गाता था—

“अगे आप खुदा कहा जं देसां, हुण बन बैठे खुदा दे प्यौ यारों”

जब कि दूसरे ने यह वाक्य उच्चारण किया था—

“सन जोड़े सन कपड़े थे तौ आप खुदा,

जो मूरख नहीं तिसको भया सौदा”

प्यारे पाठक ! पुस्तकों के ज्ञान से क्या लाभ ? जो अपने जीवन का ही कुछ पता नहीं, पुस्तके हमारे पास पड़ी हैं, और वह भी अधेरी रात में ! दोना मानें हैं, कोई ज्योति चाहिए, कोई इद्र की कला चाहिए जिसके मरोड़ने से बिजलों के लैंप जल उठे। उस समय अगर जी चाहे तो एक आध पुस्तक का एक आध अक्षर पढ़ने से भी कुछ समझ पड़े और कुछ लाभ हो।

बात बहुत लंबी होती जाती है। इन चोचलों से, इन मखौलों से, इन स्वप्नों से इस देश में कब पवित्रता आती है ? ये तमाशे सारे ही अच्छे हैं, और ऊपर लिखे हुए कई एक साधन अधिक से अधिक

## पवित्रता

पवित्रता के दाता हैं, पवित्रतावर्धक हैं परन्तु किसी किसी को तो ये सब रोग के बढ़ाने के कारण होते हैं। विद्या कैसी अच्छी चीज है, परन्तु कमीनेपन की विद्या अर्थात् केवल पुस्तकपूजा तो अधिक से अधिक उन्नति देती है। चतुरता आती है, कमीनेपन और नीचता के लिये उत्तम से उत्तम शास्त्र और दलील प्रमाण मिल जाते हैं। बल कैसी उत्तम चीज है, परन्तु एक जालिम के हाथ यह भी तो नीचता को अधिक करता है। धन इस समय के प्रचलित जीवन में कितना बड़ा संचित जोर है, परन्तु देखो तो सही क्या कर रहा है।

इस तरह से साधनों के अच्छे या बुरे होने पर मुझे कोई पांडित्यपूर्ण व्याख्या नहीं करनी, मुझे तो अपने देश की अपवित्रता के दूर करने और अपने भाई-बहिनों को मनुष्य बनाने के साधनों को देखना है। जब हम मनुष्य बन जायेंगे तब तो तलवार भी, ढाल भी, जप भी, तप भी, ब्रह्मचर्य भी, वैराग्य भी सब के सब हमारे हाथ के कंकणों की तरह शोभायमान होंगे, और गुणकारक होंगे। इस वास्ते बनो पहल्ले साधारण मनुष्य, जीते-जागते मनुष्य, हँसते-खेलते मनुष्य, नहाए धोए मनुष्य, प्राकृतिक मनुष्य, जानवाले मनुष्य, पवित्रहृदय पवित्र-बुद्धि वाले मनुष्य; प्रेम भरे, रस भरे, दिल भरे, जान भरे, प्राण भरे, मनुष्य। हल चलाने वाले, पसीना बहाने वाले, जान गँवाने वाले, सच्चे, कपट-रहित, दरिद्रता-रहित, प्रेम से भीगे हुए, अग्नि से सूखे हुए मनुष्य। आओ सब परिवार मिलकर कुछ यत्न करे।

# परिशिष्ट—

## शब्दार्थ

### सच्ची वीरता

सत्त्वगुण—प्रकृति के तीन गुणों में से प्रधान गुण । पैगाम—सन्देश । सारंगी—एक बाजा । अल्लाहू अकबर—ईश्वर महान् है । अगम्य—गहुँच के बाहर, कठिन । जर्क-बर्क—तड़क-भड़क वाला, चमकोला । कुर्बान—निछावर । पिंदोपजीवी—दूसरे के दिये हुये टुकड़े से जीवन निर्वाह करने वाला । जरी—सोने के तारों आदि से काम किया हुआ कपड़ा । शाहंशाहजमाना—सम्राट का प्रताप । जार्ज—इङ्गलैंड के राजाओं की उपाधि । अमरसन—(एमर्सन) अमेरिका का प्रसिद्ध विचारक । निर्लिप्त—जो किसी से कुछ सम्बन्ध न रखे, आसक्ति-रहित । मंसूर—जिसे ईश्वरीय ज्ञान प्राप्त हो । काफिर—मुसलमानों के अनुसार उनसे भिन्नधर्म मानने वाला, विधर्मी दुष्ट । कलाम—वाक्य । अनलहक—मैं खुदा हूँ । भगवान् शंकर—अद्वैत दर्शन के प्रतिष्ठापक शंकराचार्य । कापालिक—मध्य युग के शिव के उपासक वाम मार्गी, जो मनुष्य की खोपड़ी में खाने पीते हैं । बगोले—भैंसर की तरह चक्करदार घूमते हुए हवा के बबडर । हरकत—चेष्टा, गति । कुदरत—प्रकृति । पोप—ईसाई धर्म के रोमन कैथोलिक सम्प्रदाय के धर्माचार्य । गुस्ताखी—ढिठाई, अपराध । ब्रह्म वाक्य—ईश्वर की वाणी । पाबन्दी—आदेश का पालन करना । अटक—पंजाब की एक नदी । शिकस्त—पराजय । एरप्स—योरप का एक पहाड़ । कारनामों—युद्ध-सम्बन्धी कार्य । इल्लहाम—ईश्वरीय प्रेरणा । जलाल—प्रभाव, आतंक । रौनक—चमक दमक, सुहावनापन । कमाल—अनोखा

काम । लिबास—वेष । क्रूखेड्ज—ईसाइयों का धर्मयुद्ध । जारियों—  
 रुदन करना । नौटिंगगेल्—बुलबुल । परन्द—पक्षी । देदीप्यमान—  
 चमकता हुआ । गारों—गड्ढों । झाइज़ हाखके वीर—तसवीर में  
 चित्रित वीर-चित्रों के समान केवल दिखावे के वीर । परखे दरेज—  
 अत्यधिक । मरकज—केन्द्र । पालिसी—नीति । मरियम—ईसा की  
 माता । शाहंशाहहकीकी—बादशाह का सगा-सम्बन्धी । सलीब—  
 सूली का तख्ता । जायख—विराट् । मखौल—मजाक, खेल । गर्क—  
 डूबा हुआ मग्न । कारलायख—अंग्रेजी का प्रसिद्ध लेखक । फिजिक्स—  
 भौतिक-विज्ञान । नेपोलियन—फ्रांस का वीर सम्राट् । इत्तिफाक—  
 संयोग । बगावत—विद्रोह । सब्ज घर्कों—दूरे पनों, हरियालों से भरा  
 वातावरण । जार—रूसका बादशाह । हीरो—नायक । नफरत—घृणा  
 द्वैतदृष्टि—हम दूसरे, तुम दूसरे की भावना । कूक—गान । मलबा—  
 (Sturdy) दृढ़ता ।

### कन्यादान—

बपतिस्मा—ईसाई धर्म में दाक्षित होने का संस्कार । मसीहा—  
 मरे को जांविता करने की शक्ति रखनेवाला । मर्दुमे—मनुष्य ।  
 दीदा—दृष्टि । पंज-ए-मिजगा—आँखों की पलके । हाथ खाली मर्दुमे०  
 —आँख के लिये दर्शनीयमूर्ति मनुष्यों से भला खाली हाथ क्या  
 मिला जाय, कम से कम आँख की बरौनियों में अश्रु की लड़ियों के रूप  
 में मोतियों की एक माला तो अवश्य हो । समाधिस्थ—मन को ब्रह्म  
 पर केन्द्रित कर योग की अन्तिम अवस्था में स्थित । निर्विकल्प—  
 वह ज्ञान जिसमें आत्मा और ब्रह्म की एक रूपता का अखंड बोध हो ।  
 तिमिराच्छन्न—अंधकार से ढका हुआ । पीर—महात्मा, सिद्ध ।  
 पैगम्बर—ईश्वर का दूत । औलिया—सन्त । पतिवेदन—पति को प्राप्त  
 करने का अनुभूति । सोहने—मोहक । कदूरत—गदापन । इखलाकी—  
 शील या नीति-सम्बन्धी । मुल्की—राज्य-सम्बन्धी । नियामिका—  
 नियंत्रण करने वाली । विधायिका—रचना करने वाली । गुमराह—

रास्ता भूलना । समष्टिगत—सामूहिक सत्ता । रस्मोरवाज—रोति, परिपाटी । पतिवरा—पति को वरण करने वाली कन्या । ढब—युक्ति । दीनों दुनियाँ—यह लोक और परलोक । मुबारक—मंगलप्रद । बिछुड़ती दुलहन बतन से है—अपने पिता के घर से पति के घर जाने के लिए जब दुलहन विदा होने लगती है तो उस समय का वातावरण करुणा और प्रेम से भर जाता है । शरीर म रोमाञ्च हो आता है और गला रुक जाता है । उसे पुनः उस घर लौटने की कोई युक्ति नहीं है अतः शरीर रोमाञ्चित है और गला रुँध गया है । जाओ तुम्हें यह लोक और परलोक दोनों मंगल देने वाले हैं और हम लोगों के लिए हमारा दूल्हा मदा दी कुशल पूर्वक कायम रहे; पर हाँ प्रेम का यह आविरी दृश्य भूलना नहीं सदा याद रखना कि प्रेम में शरीर रोमाञ्चित है और गला रुँधा हुआ है । मखौल—हँसी, ठट्ठा ।

### आचरण की सभ्यता

ज्योतिष्मिती—प्रकाश वाली । उन्मदिष्णु—पागल, मतवाला । अश्रुत-पूर्व—प्रदुत । अंजील—ईसाइयों का धर्मग्रन्थ । रामरोला—अर्थ का चिल्लाना । रसूल—मुहम्मद साहब का उपाधि, मार्गदर्शक । बे-सरो—सामान—बिना आवश्यक सामग्रों । रोम—यूरोप का प्राचीन समृद्ध नगर । सेहरा—दूल्हा के सिर पर बाँधा जाने वाला कागज और गोटी आदि का बना हुआ मुकुट । रेडियम—एक मूल्यवान् धातु । अन्तर्वर्तिनी—भीतर रहने वाली । नेती—अँत । हाफिज—वह मुसलमान जिसे कुरान कठस्थ हो । शीराजी—फारस में स्थित शीराज नगर का । मोमिन—इस्लाम और खुदा पर विश्वास रखने वाला धर्मनिष्ठ मुसलमान । काफिर—इस्लाम के मत में नास्तिक । गजर—जगाने का घंटा । त्रिपिठक—बौद्ध का त्रिपिटक धर्मग्रन्थ ।

### मजदूरी और प्रेम

लावण्यमय—सौन्दर्य से भरा हुआ । इलदारे फानी में—नश्वर संसार में । किसी के घर कर में न०-इस नश्वर संसारमें किसी के विश्वास

पर भरोसा कर के मत बैठो । उस बैठिकाने वाले ईश्वर को ही अपना ठिकाना तथा उस बिना मकान वाले ईश्वर को ही अपना मकान समझो, समस्तमृष्टि ही जिसका स्थान और घर है । **अरकों**—आँसुओं । **हुये थे आँखोंके कल इशारें**—कल आँखों के इशारे के माध्यम से हमारे और तुम्हारे दोनों के क्या ही अद्भुत प्रेमालाप हुए थे और दोनों ओर आँसुओं की धारा बह चली थी । **जो खुदाको देखना हो तो**—जो ईश्वर का रूपदर्शन करना होता है तो मैं तुमको देखता हूँ और जो तुमको देखता हूँ तो उस देखने में ईश्वर का दर्शन होने लगता है क्यों कि तुम्हारी छवि में ईश्वर का सही रूप दिखाई पड़ता है । **मयस्सर—प्राप्त होना** । **नमोलालिमा**—सूर्योदय के पहले उषःकाल की लाली । **समष्टि-रूप**—सामूहिक सम्पत्ति या सत्ता । **व्यष्टिरूप**—अलग-अलग होने का भाव । **मौरूसी**—बाप-दादों की छोड़ी हुई परम्परागत जायदाद । **अन्ततः**—वास्तव में । **अन्योन्याश्रय**—एक दूसरे पर अवलम्बित, कार्य-कारण सम्बन्ध । **जोन आँव आर्क**—फ्रांस की एक वीरांगना । **टाख-स्टाय**—रूस का महान् लेखक । **उमर खैयाम**—फारस का प्रसिद्ध कवि । **खलीफा उमर**—अरब के एक खलीफा ( धर्माचार्य ) । **लोकान्तर**—दूसरे लोक । **निर्वाणसुख**—मोक्षका आनन्द । **रास्किन**—अंग्रेजी का प्रसिद्ध लेखक । **विमर्दित**—पिस जाना या रौद जाना । **हैरीत आशकों की**—प्रेमियों की यह रीति है कि वे अपने प्रिय के लिए शरीर और मन निछावर कर देते हैं, रोते हैं, अनेक कष्ट उठाते हैं और इस प्रकार उसे प्यार करते हैं ।

## अमेरिका का मस्त जोगी वाल्ट्‌व्हिटमैन

**शिवशंकरों**—भगवान् शंकर की मूर्ति के समान गोल-गोल पत्थर । **चंचरीक**—भ्रमर । **अमरवत्**—भौरों के समान । **बिलिया**—मिट्टी की बनी हुई मटकी । **शाहदौला**—बादशाह । **पोरियाँ**—बोंस आदि के दो गाँठों के बीच का भाग । **कलदार-सम्यता**—रूपों के बल तड़क-भड़क से

प्रकट होने वाली सम्यता । ब्रह्मनिष्ठ—परमेश्वर के चिन्तन में डूबा हुआ । तरजुमा—भाषान्तर, उल्था । बादशाह—जहाज का पाल ।

## पवित्रता

बियाबान—उजाड़, निर्जन और निर्जल स्थान । कंचनजंगा—( कंचनजंघा ) हिमालय पर्वत का एक रमणीक शिखर । चंडूख—एक पत्तो । कजा—सम्पन्न, ( मृत्यु, नागा ) । था जिनकी खातिर नाच किया—जिनको प्रसन्न करने के लिए यह नाच किया था, जब उनकी मूर्ति सामने आ गयी तब उस आनन्द की विह्वलता में मैं आप कहीं रह गया, नृत्य दूसरी जगह हो गया और तान कहीं की कहीं लहराने लगी । ईद—शुभ दिन । मार्गशीर्ष—अग्रहण का महीना । मोतियाबिन्द—आँख में सफेद दाग पड़ जाना जिससे दिखायी नहीं पड़ता । बुतखाना—मन्दिर । पद्मासन—योग करने का आसन विशेष । कपोल—मुखमंडल । सर्वकलासंयुक्त—सभी कलाओं का जानने वाले । अपतिस्मा—दीक्षा । निर्जन्तुक—जीवों से शून्य । अजनबी—परदेशी । ब्रह्मवादिनी—ब्रह्म का निरूपण करने वाली । बेयार—बिना दोस्त । दुलदुले—एक घोड़ी जिसे मिश्र के हाकिम ने मुहम्मद साहब को दिया था और जिसकी नकल मुसलमान मुहर्रम के दिनों में निकालते हैं । दीदार—दर्शन । बुतपरस्ती—मूर्ति-पूजा । बागियाना—विरुद्ध । गाहे-बगाहे—कभी कभी । बहशियों—जंगली जानवर, पागल । सदा—शब्द, ध्वनि, पुकारने की आवाज । दुनिया की छत पर—दुनिया की छत पर खड़ा हूँ और तमाशा देखता हुआ खुश हूँ, कभी कभी मस्ती में पागलों की-सी आवाज लगा देता हूँ । पुलपिट—गिरजाधर में उपदेश देने वालों का ऊँचा आसन । निवारणार्थ—रोकने के लिए । संन्यासाश्रम—त्याग और साधना का जीवन । शंकर भगवान्—आचार्य शङ्कर । गौड़पाद—शंकराचार्य के गुरु के गुरु, जिन्होंने माण्डूक्योपनिषद् पर कारिकाएँ लिखी हैं । समष्टि—सामूहिक रूप से ।

तेजोऽसि तेजो मयि धेहि०—हे परमेश्वर ! आप तेज हैं मुझे भी तेजस्वी करे, आप पुंस्त्व हैं मुझे भी पुंस्त्वशील बनाये । आप बल हैं मुझे भी बलवान् बनायें, आप दीप्ति ( चमक ) हैं मुझे भी दीप्तिमान् करें, आप यज्ञ हैं मुझे भी यज्ञशील बनायें, आप शक्ति हैं मुझे भी, शक्तिमान् करे । हबशी—अफ्रीका की जंगली जाति । बट कर खड़ा हूँ खाली जहान में०—इस शून्य सृष्टि में मैं साहस पूर्वक खड़ा हूँ और अपने लक्ष्य की प्राप्ति के लिए मेरे अपने बल और हृदय में अपार भरोसा है । अमली तौर—कार्य रूप में कर दिखाना । निघण्टु—शब्दकोष । काफूर—कर्पूर । पतञ्जलि—योग सूत्रों के रचयिता प्रसिद्ध महर्षि । शाक्यमुनि—गौतम बुद्ध । कैवल्य—अपने स्वरूप में स्थिति, मोक्ष, अलिप्तभाव । वैशेषिकवाली—वैशेषिक दर्शन की । विशेष—सात पदार्थों में से एक । निर्वाण—परम शान्ति । विदेह मुक्ति—मृत्यु के बाद मिलने वाली मुक्ति । आगे आप खुदा०—सृष्टि में मनुष्य को ईश्वर ही कहा जाता है, बाद में तो वह अपना प्रेम अनन्त आत्मा के प्रति अर्पित करके स्वयं ही मनुष्य से ईश्वर बन जाता है । सन जोड़े सन कपड़े थे०—जिस प्रकार एक एक धागे के ताने-बाने से कपड़ा तैयार हो जाता है वैसे ही व्यक्तिगत आत्माओं का सामूहिक रूप ईश्वर है । इसलिए जो मूर्ख नहीं हैं, जानने वाले हैं, उनके लिए ईश्वर ही अपना अभीष्ट सौदा ( खरीदने की वस्तु ) है । चोचलों—गप्प की बातें । छलीख—तर्क ।













